

डिप्लोमा कोर्स इन कल्चर एण्ड टूरिज्म संस्कृति एवं पर्यटन में डिप्लोमा कोर्स



Traditions and Culture of the People of Rajasthan (State and Society)

राजस्थान के निवासियों की परम्पराओं एवं संस्कृति की एक रूपरेखा (राज्य एवं समाज)

Diploma Course in Culture and Tourism 5



डिप्लोमा कोर्स इन कल्चर एण्ड टूरिज्म संस्कृति एवं पर्यटन में डिप्लोमा कोर्स

# Traditions and Culture of the People of Rajasthan (State and Society)

"राजस्थान के निवासियों की परम्पराएँ एवं संस्कृतिः (राज्य एवं समाज)"

डी.सी.सी.टी. - 02

## Diploma Course in Culture and Tourism 5

#### पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

#### (1) प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा

कुलपति, कोटा खुला विश्वविद्यालय कोटा

#### (3) प्रो. रविन्द्र कुमार

निदेशक, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लायब्रेरी, तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली

#### (5) प्रो. जी.एन. शर्मा

रिटायर्ड प्रोफेसर, इतिहास व संस्कृति विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

#### (7) प्रो. एम.बी. माथुर

पूर्व कुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

#### (9) प्रो. एम.एस. जैन

रिटायर्ड प्रोफेसर, इतिहास एवं संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

#### (11) प्रो. दिलबाग सिंह

इतिहास विभाग,

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

(2) डॉ. आर.के. सक्सैना रिटायर्ड अध्यक्ष, इतिहास विभाग, एम.एल. सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयप्र

#### (4) प्रो. एस.एन. दूबे

इतिहास एवं संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

#### (6) पदमश्री (श्रीमती) लक्ष्मी कुमारी चूंडावत

प्रसिद्ध साहित्यकार एवं मनीषी, बनीपार्क, जयप्र

#### (8) डॉ. रीमा हू जा

एसोसियेट प्रोफेसर, भारतीय संस्कृति एवं परम्परा विभाग कोटा खुला विश्वविदयालय, कोटा

#### (10) प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा (संयोजक)

अध्यक्ष,भारतीय संस्कृति एवं परम्परा विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

#### पाठ्यक्रम निर्माणदल

#### (1) श्री सुखवीरसिंह गहलोत

सचिव, जगदीश सिंह गहलोत शोध संस्थान, जोधपुर

#### (3) डॉ. मनोहरसिंह राणावत

उपनिदेशक, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ(म.प्र.)

#### (5) प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा

अध्यक्ष,भारतीय संस्कृति एवं परम्परा विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

#### (2) डॉ. हुकमसिंह भाटी

निदेशक, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधप्र

#### (4) डॉ. डी.बी. क्षीरसागर

उपनिदेशक, राज्य प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान,जोधपुर

#### (6) श्री अर्जुनसिंह सोलंकी

कवि एवं पत्रकार, कोटा

#### (7) डॉ.(श्रीमती) वसुमती शर्मा

शोध अधिकारी, राज्य प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान,जोधपुर

#### सम्पादन एवं संशोधन

#### प्रो. जी. एस. एल. देवड़ा, अध्यक्ष,

भारतीय संस्कृति एवं परम्परा विभाग, कोटा खुना विश्वविद्यालय, कोटा

#### अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	प्रो. (डॉ.)एम.के. घडोलिया	योगेन्द्र गोयल
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	संकाय विभाग	पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

#### पाठ्यक्रम उत्पादन

#### योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी

वर्धमान महावीर खुला विश्वविदयालय, कोटा

#### उत्पादन : अप्रैल 2012

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमित के बिना किसी भी रूप में 'मिमियाग्राफी'(चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमित नहीं है। क्लसचिव, व. म. खु. विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिए मृद्रित एवं प्रकाशित।

## कोटा खुला विश्वविद्यालय

डी.सी.सी.टी.-2 डिप्लोमा कोर्स इन कल्चर एण्ड टूरिज्म संस्कृति एवं पर्यटन मे डिप्लोमा कोर्स

पाठ्यक्रम- द्वितीय खण्ड- पंचम

## राजस्थान के निवासियों की परम्पराएँ एवं संस्कृति(राज्य एवं समाज)

इकाई -29	राजस्थानी भाषाएँ : बोलियाँ तथा प्रचलित लिपियाँ	7–19
इकाई -30	राजस्थान का वाट साहित्य	20–29
इकाई -31	लोककथा एवं लोक काट्य	30–38
इकाई -32	राजस्थान का ख्यात साहित्य	39–50
इकाई -33	राजस्थान का संत साहित्य	51–66
इकाई -34	राजस्थान में ब्रजभाषा एवं साहित्य	67–74
इकाई -35	राजस्थान में शैक्षणिक संस्थाएँ एवं अकादमियाँ	75–84

## इकाई सं. 29 "राजस्थानी भाषाएँ "बोलियों एवं प्रचलित लिपियाँ" (एक परिचय)

#### इकाई संरचना

- 29.01 उष्ण
- 29.02 प्रस्तावना
- 29.03 राजस्थानी भाषा का उद्भव
- 29.04 राजस्थानी भाषा का विविधतापूर्ण समृद्धि साहित्य
  - 29.04.1 जैन साहित्य
  - 29.04.2 चारण साहित्य
  - 29.04.3 भिक्त साहित्य
  - 29.04.4 लोक साहित्य
  - 29.04.5 काव्य रचनाएँ
  - 29.04.6 डिंगल : पिंगल
- 29.05 प्रशासन , व्यवसाय व पत्रावली की भाषा राजस्थानी
- 29.06 राजस्थानी भाषा की बोलियाँ
  - 29.06.1 मारवाड़ी
  - 29.06.2 मेवाड़ी
  - 29.06.3 ढूंढाड़ी
  - 29.06.4 हाड़ौती
  - 29.06.5 मेवाती
  - 29.06.6 बागडी
  - 29.06.7 मालवी
- 29.07 राजस्थानी भाषा की लिपि
- 29.08 टैसीटोरी का राजस्थानी भाषा का योगदान
- 29.09 डकाई सारांश
- 29.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

## 29.01 उद्देश्य

जब हम राजस्थानी संस्कृति एवं परम्पराओं का अध्ययन करते हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि इस प्रान्त की भाषा एवं उसकी बोलियाँ का एक अध्ययन करें ताकि हम यहां के जीवन का समीप का परिचय पा सकें । इस इकाई में आप इसी उद्देश्य के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे : -

- (1) राजस्थानी भाषा का उद्भव किस प्रकार हुआ ।
- (2) राजस्थानी भाषा की ऐतिहासिक समृद्धि की प्रकृति किस प्रकार की है।
- (3) इस भाषा की कितनी बोलियाँ हैं।
- (4) इसके लोक साहित्य का अपना भण्डार है।

#### 29.02 प्रस्तावना

भाषा मनुष्य के विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। इसके द्वारा मानव का समाज से सम्पर्क स्थापित होता है। भाषा के माध्यम से ही मानव ने अपना सांस्कृतिक एवं भौतिक विकास किया है, किन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि मानव के विकास के साथ भाषा का भी विकास होता है। मनुष्य की भाषा उसकी सृष्टि के आरंभ से, अविरल गित से प्रवाह रूप में चली आ रही है। नदी के वेग के समान ही उसकी भाषा का वेग भी अनियन्त्रित होता है। भाषा समाज में अनेक रूपता का यही मूल कारण है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह अनेक रूपता पुरानी है। समय-समय पर इसी अनेक रूपता को संयत एवं टकसाली रूप देने का बार-बार प्रयत्न किया जाता रहा। किसी भाषा के इस स्संगठित रूप को प्रस्तुत करने में उस भाषा का व्याकरण और कोश प्रधान साधन है।

## 29.03 राजस्थानी भाषा का उद्भव

आधुनिक भारतीय भाषाओं में राजस्थानी भाषा का भाषा वैज्ञानिक साहित्य और लोकाभिव्यक्ति की दृष्टि से बड़ा महत्व है। यदि भारत के संबंध में हम आर्य क्षेत्र की भाषाओं के विकास की ओर दृष्टिपात करते हैं तो पहला उदाहरण वैदिक संस्कृत का सामने आता है । तत्पश्चात् साहित्यिक संस्कृत का विकास हु आ जिसमें आदि कवि वाल्मीकि, कालीदास, भवभूति, आदि महान् कवियों ने अपनी रचनाएं की । संस्कृत भाषा का काल काफी लम्बा रहा और उसके साथ-साथ जन जीवन में प्राकृत का प्रचार-प्रसार होने लगा और कालान्तर में वह लेखन की भी सशक्त भाषा बनी, जिसमें जैन और बौद्ध धर्म की प्रारंभिक रचनाएं हुई । प्राकृत रूपों से ही भारत के विभिन्न भागों में अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ और यह विकास क्रम 12 वीं 13 वीं शताब्दी तक चलता रहा । आचार्य हेमचन्द्राचार्य 12 वीं शताब्दी के महान् विद्वान हुए हैं जिन्होंने इन भाषाओं का व्याकरण लिखा । अपभ्रंश भाषाओं में से शौरसेनी अपभ्रंश का विस्तार क्षेत्र काफी बड़ा था और वह उत्तर पश्चिम भारत में काफी दूर तक फैली हुई थी, उसके इस प्रभाव क्षेत्र में 13 वीं शताब्दी के लगभग जिस नई भाषा का विकास इस भूखंड में हु आ उसे इतालवी विदवान तैस्सीतोरी ने प्रानी पश्चिमी राजस्थानी कहा है । किसी भाषा के विकास की प्रक्रिया सहज व सुदीर्घ होती है । वैसे राजस्थानी भाषा के अंकुर अपभ्रंश की कोख से नौवीं शताब्दी में ही फूटने लग गये थे जिसका प्रमाण हमें तत्कालीन जैन कवि उदयोतन सूरि रचित 'क्वलय माला ' कथा में मिलता है। उस समय भारत के विभिन्न भागों में जो जनभाषाएं बोली जाती थी उनमें मरू भाषा का भी उल्लेख है । प्राचीन काल में राजस्थानी को मरूभाषा के नाम से अभिहित किया जाता रहा है । परन्तु राजस्थानी भाषा का विकसित व साहित्यिक रूप 13 वीं शताब्दी से मिलता है । जिसे तैस्सीतोरी ने प्रानी राजस्थानी कहा है ।

पुरानी परिश्चमी राजस्थानी का काल 13 वीं शताब्दी से 16 वीं शताब्दी के मध्य चलता रहा और इस दौरान उसकी कोख से गुजराती व राजस्थानी भाषाओं ने अपना स्वरूप ग्रहण किया और 16 वीं शताब्दी तक आते - आते इन दोनों भाषाओं ने अपना अलग-अलग स्वतंत्र रूप ग्रहण कर लिया। राजस्थानी में इस काल में ढोला मारू रा दूहा, 'मीराबाई के पद ' 'कान्हड़दे प्रबंध ' राव जैतसी रो छंद, 'रणमल्ल छंद ' 'जैसी भारत विख्यात सशक्त रचनाएं निर्मित हुई। 16 वीं शताब्दी से निरन्तर

राजस्थानी में गद्य और पद्य की रचना का बहुत विशाल साहित्य रचा गया, जो ग्रंथ परिमाण में करीब दो लाख से ऊपर है ।

भारतीय भाषाओं पर विगत में कार्य करने वाले विख्यात भाषाविदों ने राजस्थानी को एक स्वतंत्र एवं सम्पन्न भाषा माना है। संक्षेप में मूर्धन्य भाषा विशेषज्ञों के संदर्भ से बात करें तो 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में भाषा विज्ञान के श्रेष्ठ विद्वान सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' 1907 ई. में दो खंडों में राजस्थानी पर विचार करते हुए इसे एक स्क्तंत्र और बड़े परिवार की भाषा माना है एल.पी. तैस्सीतोरी ने सन् 1914 - 16 में "इण्डियन एण्टीक्वेरी" में धारावाहिक निबंधों में इस, भाषा के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डालते हुए इसे एक स्वतंत्र और सम्पन्न भाषा माना है। उनके ये निबंध पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। इन दोनों विद्वानों के अलावा भारत के सुविख्यात भाषाविद् डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने राजस्थानी भाषा की विशेषताओं और उसके स्वतंत्र अस्तित्व पर जोर ही नहीं दिया

बल्कि अन्य भाषाओं पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को भी उजागर किया है। इसके अतिरिक्त शिकागो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर कालीचरण बहल ने भी इसे एक स्वतंत्र और समृद्ध भाषा मानते हुए उसका संरचनात्मक व्याकरण, उदाहरण सहित लिखा है जो राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी से प्रकाशित हुआ है। अत इसमें कोई संदेह नहीं है कि राजस्थानी एक स्वतंत्र और समृद्ध भाषा है। इन सभी विद्वानों ने राजस्थानी के विभिन्न अंचलों में बोली जाने वाली बोलियों -ढूंढाडी, हाडौती, बागड़ी मेवाती, मारवाड़ी, मेवाड़ी आदि को इस भाषा की बोलियाँ माना है। यद्यपि राजस्थानी का विस्तार क्षेत्रीय

बोलियों की दृष्टि से काफी बड़ा है क्योंकि अन्य प्रांतीय भाषाओं में भी इसका प्रभाव देखा गया है, परन्तु जहां तक वर्तमान राजस्थान की भौगोलिक स्थिति और एक इकाई का प्रश्न है उसकी भाषा राजस्थानी ही रही है। राजस्थान की संस्कृति की नींव राजस्थानी भाषा है। लिपियों एक राजपूताने संभाग में लगभग एक करोड़ साठ लाख लोग राजस्थानी भाषा आँके गये थे। यह संख्या निरन्तर बढ़ती रही है और उसी अनुपात में राजस्थानी बोलने वालों की संख्या भी बढ़ी है। सन् 1961 की जनगणना में राजस्थानी को स्वतंत्र भाषा माना है और उसकी 72 बोलियों की गणना की है। ऐसी धारणा है कि अब लगभग 8 करोड़ लोग हैं जो राजस्थान में रहते हैं अथवा अन्य प्रांतों में रहते हैं और राजस्थानी बोलते हैं

## 29.04 राजस्थानी भाषा का विविधता पूर्ण समृद्ध साहित्य

राजस्थान ने मध्यकाल में निरन्तर बाहय आक्रांताओं से लोहा लिया है। गौरी, खिलजी और तैम्र्रवंशीय मुगलों के आक्रमणों का साहसपूर्ण मुकाबला राजस्थान के निवासियों ने किया है। इस संघर्षमय काल की जीवंत अभिव्यक्ति हमें तत्कालीन राजस्थानी साहित्य में मिलती है। यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है कि राजस्थानी भाषा में जैसा वीर साहित्य लिखा गया है वैसा बहु त कम भाषाओं में देखने को मिलेगा। विश्व किव रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने एक चारण के मुख से जब कुछ वीर गित सुने तो उनके ये उद्गार थे कि "शक्ति रस का साहित्य तो किसी न किसी रूप में प्रत्येक प्रांतीय भाषा में मिलता है, परन्तु राजस्थान के किवयों ने अपने रक्त से जिस वीर रस के साहित्य का निर्माण किया है उसकी जोड़ का साहित्य अन्यत्र नहीं मिलता है"।

सम्पूर्ण प्राचीन राजस्थानी साहित्य को 4 मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है।

- (1) जैन साहित्य
- (2) चारण साहित्य
- (3) भिक्त साहित्य
- (4) लोक साहित्य

#### 29.04.1 जैन साहित्य

जैन साहित्य अधिकांश में जैन यतियों और उनके अनुगामी श्रावकों द्वारा लिखा गया है । उसमें उनके धार्मिक नियमों और आदर्शों का कई प्रकार से गद्य तथा पद्य में वर्णन है । यह साहित्य बहुत बड़े परिमाण में लिखा गया है और प्रारम्भिक राजस्थानी साहित्य की तो वह बड़ी धरोहर है । जैन साधुओं ने धार्मिक साहित्य का ही निर्माण किया है पर अन्य अच्छे साहित्य के संग्रह और सुरक्षा में संकीर्णता नहीं बरती । अतः उनकी राजस्थानी साहित्य को बहुत बड़ी देन है ।

#### 29.04.2 चारण साहित्य

चारण शैली में साहित्य का निर्माण चारण जाति के अतिरिक्त राजपूत, मोतीसर, भोजक ब्राहमण, ओसवाल आदि अनेक जाति के लोगों ने किया है परन्तु चारणों की इसे विशेष देन है । चारण जाति का शासक वर्ग के साथ विशेष संबंध रहा है । संघर्ष के युग में उन्होंने अपने आश्रयदाताओं को कभी अपने कर्तव्य से च्युत नहीं होने दिया । उनका साहित्य अत्यंत प्राणवान और जीवंत साहित्य है । उसमें जीवन की जो ऊर्जस्विता दृष्टिगोचर होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है । इस प्रकार के साहित्य की रचना करने वाले किवयों की शासक वर्ग और समाज में बड़ी प्रतिष्ठा थी । शासकों पर कई बार आपत्ति आती थी तो वे उनकी पूरी सहायता करते थे । चारणों को इतना सम्मान मिलता था, इसके उपरांत भी वे शासकों को खरी-खरी सुनाने में भी कभी नहीं चूकते थे । युद्ध में वीर गित पाने वाले की जहां वे प्रशंसा करते थे वहीं युद्ध से भाग जाने वाले की निंदा करने में भी कसर नहीं रखते। यही कारण है कि उनके द्वारा रचा गया अधिकांश साहित्य वीर रसात्मक है और उस साहित्य का समकालीन समाज में बड़ा ही महत्व रहा है ।

#### 29.04.3 भक्ति साहित्य

राजस्थान में भिक्त साहित्य भी बहुत बड़े परिमाण में लिखा गया है। संत किवयों की वाणियां आज भी समाज में प्रचितत है। उत्तरी भारत की संत परम्परा से प्रभावित होने पर यहां की संत परम्परा में तथा भिक्त साहित्य में एक विशेषता यह रही हे कि उनका झुकाव अधिकतर निर्गुण भिक्त की ओर रहा है। यहां के किवयों ने यहां की भाषा में नवीन उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं आदि के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति को एक नवीन रूप दिया है जो बड़ा ही प्रभावोत्पादक और सरस है।

#### 29.04.4 लोक साहित्य : -

किसी भी देश या प्रांत का लोक साहित्य वहां के जन-जीवन से निःसृत स्वाभाविक भावोद्रेक को व्यक्त करता है। राजस्थान की वीर प्रसविनी भूमि में यहां हजारों कवियों ने अपनी काव्य कला के माध्यम से राजस्थानी साहित्य की सेवा की है वहीं कितने ही अज्ञान जन कवियों ने अपनी सरल और सरस वाणी में अपने लौकिक अनुभवों को जन साधारण की निधि बना दिया है। लोक-गीत, पवाड़े, लोक-कथाएं, कहावतें, मुहावरे आदि राजस्थानी लोक साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। लोक-साहित्य जितने बड़े परिणाम में यहां सुरक्षित है उतना शायद भारत की किसी अन्य भाषा में उपलब्ध नहीं होगा।

#### 29.04.5 काव्य रचनाएँ

जहाँ तक साहित्य विधाओं का प्रश्न है, इसमें महाकाव्य खण्ड काव्य और मुक्तक काव्य बहु त बड़ी संख्या में लिखे गये हैं। महाकाव्यों में 'राजरूपक', 'सूरज प्रकाश', 'छत्रपति रासो ' आदि ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। खंड काव्यों की गिनती भी सैकड़ों में है जिनमें 'ढोला मारू रा दूहा ',' वेलि क्रस्ण रुकमणि री ', 'रुकमणि हरणं', 'राव अमर सिंघ री झमाल', 'राव रतन हाड़ा री वेलि ' आदि कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। इसी प्रकार गद्य-पद्य रचनाएं भी निर्मित हुई है जिनमें 'राठौड़ रतन सिंघ री वचनिका', 'अचदास खींची री वचनिका' 'माताजी री वचनिका' आदि ग्रंथ प्रसिद्ध है और प्रकाशित भी हो चुके हैं। काव्य को शास्त्रीय आधार देने के लिए इसके अपने रीति ग्रंथों का निर्माण हुआ जिनमें से रघ्वर जस प्रकास, 'पिंगल सिरोमणि, 'रघुनाथ रूपक ' आदि प्रकाशित हो चुके हैं।

पद्य साहित्य की तरह ही राजस्थानी का गद्य साहित्य भी बहु त धनी है । यह साहित्य बात ख्यात, वचनिका, पीढ़ियावली आदि अनेक रूपों में लिखा गया है। यहाँ का बात साहित्य तो अपना विशिष्ट महत्व रखता है । राव अमरसिंघ री बात, जंखड़ा मुखड़ा री बात ' अकबर बादशाह चित्तौड़ लियो तिण समय री बात, 'बींजा सोरठ री बात ' आदि महत्वपूर्ण हैं । राजस्थानी में प्राचीन छ: ग्रंथों के अनुवाद व टीकाओं का काम भी बड़े परिमाण में किया गया है ।

#### 29.04.6 डिंगल -पिंगल

पिंगल साहित्य मुख्यत : भाट जाति द्वारा रचित रचनाएं हैं । राजस्थान में पिंगल भाषा का नाम ' भाट मायखा ' भी है और जिसकी कविता छन्दों में हैं । डिंगल इससे अलग है । दोनों का व्याकरण, छन्द शास्त्र और प्रकृति भिन्न हैं । इस सम्बन्ध में एक दोहा प्रचलित है : -

## "चारण डिंगल चातुरी, पिंगल भाट प्रकाश गुण संख्या कल-वरण-गण, यांरो करो उजास।"

पिंगल का विकास शौर सैनी अपभ्रंश से हुआ है और डिंगल का गुर्जरी अपभ्रंश से । दोनों में कौनसा प्राचीन है, विवाद है । पिंगल भारत में सम्भवतः उस प्रदेश में अधिकांशतः बोली जाती थी जो दिल्ली व ग्वालियर के मध्य स्थित हैं । इसमें ब्रज प्रदेश मुख्यत ः हैं । संभवत : मरूभाषा और डिंगल एक ही हैं बूंदी के किव सूर्यमल मिश्रण ने कई स्थलों पर दोनों को एक स्थान का बताकर सम्बोधन किया है । पण्डित रामकरण आसोपा व नरोतमदास स्वामी ने राजस्थानी व विशेषकर मारवाड़ी के लिये डिंगल शब्द का प्रयोग किया है । इसे चारणी शैली के अर्थ में भी सम्बोधित किया गया है । डिंगल साहित्य की प्रसिद्ध एवं प्राचीन रचना पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों की रचना " अचलदास खीचीं री वचनिका' ' है । अन्य प्रसिद्ध रचनाओं में बीठू सज़ा कृत "छन्द राव जैतसी रो " है । अतः स्पष्ट है कि राजस्थानी पद्य और गद्य का विपुल भंडार इस भाषा की बहुत बड़ी धरोहर है जिसके अध्ययन के बिना भारतीय साहित्य का अध्ययन अधूरा ही रहता हे ।

### 29.05 प्रशासन, व्यवसाय व पत्रावली की भाषा राजस्थानी

स्वाधीनता से पूर्व राजस्थान के रजवाड़ों की प्रशासनिक एवं अदालती भाषा भी राजस्थानी ही रही है। मारवाड़ रियासत के रीजेंट सर प्रताप ने आदेश जारी कर सरकारी काम काज मे राज भाषा राजस्थानी को प्राथमिकता देने पर बल दिया, क्योंकि वह जनता की भाषा होने से घर-घर में बोली व लिखी जाती रही है। अगर कोई राजस्थान अभिलेखागार के रिकार्ड का अध्ययन करे तो उसे कामदारी (प्रशासकीय) राजस्थानी जो अलग- अलग रियासतों के नाम से भी जानी जाती थी का परिचय प्राप्त हो सकता है।

आधुनिक काल तक व्यवसाय की मुख्य भाषा राजस्थानी ही रही है। बहिएं, हुण्डी व अन्य पत्राचार राजस्थानी मोडी, महाजनी में ही होता रहा है। लघु व मध्यम. स्तर के व्यवसायी अभी तक सारा काम काज राजस्थानी के माध्यम से बहिएं लिखकर करते हैं और उनकी पत्रावली भी राजस्थानी में होती है।

## 29.06 राजस्थानी भाषा की बोलियां

राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत कई बोलियां हैं जिनमें परस्पर विशेष अन्तर नहीं है । सिर्फ भिन्न -भिन्न प्रदेशों में बोली जाने के कारण इनके भिन्न-भिन्न नाम पड़ गये हैं ।

ग्रियर्सन ने राजस्थान बोलियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है :

- (1) पश्चिमी राजस्थानी-इसमें मारवाड़ी थली, बीकानेरी, बागड़ी, शेखावाटी, मेवाड़ी, खैराड़ी, गोडवाड़ी और देवड़ावाटी सम्मिलित हैं।
- (2) उत्तर पूर्वी राजस्थानी अहीरवाटी और मेवाती ।
- (3) ढूंढाड़ी इसे मध्य पूर्वी राजस्थानी भी कहा जाता है; जिसमें तैरावाटी, जयपुरी, कोठैड़ी, राजावाटी, अजमेरी, किशनगढ़ी, शाहपुरी एवं हाडौती, सम्मिलित हैं ।
- (4) मालवी या दक्षिणपूर्वी राजस्थानी- इसमें रांगडी और सोंडवाड़ी है।
- (5) दक्षिणी राजस्थानीः निमाड़ी

अगर भीली को भी राजस्थानी के अन्तर्गत माना जाये तो इनकी संख्या छः हो जाएगी । ग्रियर्सन ने यद्यपि इसे राजस्थानी से अलग माना है । तथापि व्याकरण एवं भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे अलग नहीं माना जा सकता ।

यो तो राजस्थानी भाषा की 72 बोलियां मानी गई है। यहां 12 कोस पर बोली पलटती है। परन्तु इस भाषा की मोटे रूप में सात बोलियां मान सकते हैं। मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूंढाड़ी, हाडौती, मेवाती, बावगड़ी एवं मालवी।

#### 29.06.1 मारवाडी :

मारवाड़ी का प्राचीन नाम मरूभाषा है । यह जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा सिरोही क्षेत्रों में प्रचलित है और अजमेर- मेरवाड़ा एवं किशनगढ़ तथा पालनपुर के कुछ भागों, जयपुर क्षेत्र के शेखावटी प्रदेश, सिंघ प्रांत के थोड़े से अंश और पंजाब के दक्षिण में भी बोली जाती है। मारवाड़ी का विशुद्ध रूप जोधपुर बीकानेर संभाग एवं उसे पास -पास के स्थानों में देखने में आता है। इसका साहित्य बहु तबढ़ा-चढ़ा है। इसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द विशेष रूप से मिलते हैं । कुछ अरबी-फारसी के शब्द

भी सम्मिलित हो गये हैं। मारवाड़ी का साहित्य बहुत विशाल और वैविध्यपूर्ण राजस्थान का प्रसिद्ध मांड राग इसमें बहुत खिलता है। इसमें वर्तमान के लिये 'है ', 'छै ', भूत के लिये, 'हा ', द्वो ' तथा सम्बन्धकारक के लिये 'रा, री, रो, का प्रयोग होता है। 'के ' के स्थान पर 'ने ' का उच्चारण अधिक होता है। मारवाड़ी गद्य और पद्य दोनों के 'नमूने ' देखिये: -

(क) अेक कंज्स कनै थोड़ौ-सो धन छो । उठानै रोजीना इण बात रौ डर रैवतो कें संसार रा सगला चोर अर डाक् म्हारा ई धन माथै निजर गढायोड़ा है । अेड़ी नीं हु वै के वै कर्व्ह इणनै लूट लें । वो आपरा धन नै बचावण वास्तै अपारै कनै जो माल -मत्तौ हो सो बेच 'र अएक सोनी री ईट मोल लीवी अर उणनै घर में अएक ओला री जगा गाड़ दी । पण इत्तौ करण सू ई उणरौ मन धापियौ नीं जिण सू वो रोजीना उठै जाय 'र देख लेवतौ के कोई ईट लेय 'र तो नी गयौ है । उणत्र रोजीना उठै जावतौ देख 'र उणरा नौकर नैं कीं भैय हु यी । वो मोकौ देखर अएक दिन उठै गयौ अर जमीन नौ खोदर ईट काड 'र ले गयौ । कंज्स आपरी रोजीना री बिलियां जठै ईट गाडियोड़ी ही उठै गयौ तो देखियौ के ईट तौ कोई चोर 'र ले गयौ । तद दणनै घणौ सोच हु वौ अर गैला ज्यू जोर-जोर सू रोवण लागौ । उणनै इण तरै रोवतौ -रींखतौ सुण कोई पाड़ौसी उणरै कनै आयौ अर दुख री कारण पुंछियौ । जद वो पाड़ौसी उणनै अएक भाटी देय 'र कैयौ - ' भाई! अबै रो मती अर और भाटी इणी जगा गाड़ दे । अर मन में समझ ले कें सोना री ईट ही गाडियोड़ी है । क्यू कें तू तौ सोना री ईट सूं फायदौ उठावतों नी हो जिण सू थारै भावै तो सोना री ईट अर भाटी सरीसा हीज है । धन री उपयोग नीं करण सू धन रौ हु वणों अर नीं हु वणों बराबर हीज है ।

(ख) दासी कुण विलमायौ अए अबै तांई नीं आयौ रावत बारणै बांगा में धूमण गयौ म्हारौ रावितयों सरदार बांगा मांयली कोयल म्हारौ लियौ छै भंवर विलमाय ।। दासी ।। सैल करण सायबौ गयौ हु य लीली असवार कै जंगल री मिरगल्यां म्हारौ लियौ छै स्याम विलमाय ।। दासी ।। सरवर न्हावण पीव गयौ साथीड़ा रै साथ । कै सरवर री मछिलयां म्हारौ लियौ छै भंवर विलमाय ।। दासी ।। चढ चढ दासी मेडियां झांक झरोखां मांय जै तनै दीसै आवतौ म्हारौ मद छिकयौ स्याम ।। दासी ।। लीला घोड़ी हांसली अलबेलौ असवार कंडला कटारी वांकड़ी सोरठडी तरवार ।। दासी ।।

#### 29.06.2 मेवाडी :-

यह मेवाइ क्षेत्र के दक्षिण-पूर्वी भाग को छोड़कर सम्पूर्ण मेवाइ प्रदेश और उसके निकटवर्ती प्रदेशों के कुछ भागों में बोली जाती है। मेवाड़ी का शुद्ध रूप मेवाड़ के गाँवों में देखने को आता है जहाँ यह अपने असली रूप में प्रचलित है। मेवाड़ी का एक ' 'नमूना " देखिये (मारवाड़ी कथा का मेवाड़ी रूप)

अेक मंजी तीरै थोड़ौक धन हो। वणी नैं हमेसां भौ लाग्यौ रैतो कै दुनियां मातर रा चोर और धाड़ेती म्हारा हीज धन ऊपरै आँख लगाया है। नीं जाणै कदी वी लूटी लेला। वणी आपरा धन नैं संकट ऊँ बचावा रै वात्तै आपणों हंगलोई बेच -खाचनै होना री एक ईंट मोले ली दी वणी पूंजी घर में एक छाने री ठौड़ गाड़ राखी। पण अतरा ऊंज सबर नी राख नै वो रोज वणी ठकाणों जाइनै देखतों के कोई होना री ईंट नै चोरीनै तौ नीं ले गियौ है। वणी नै अणी तरेऊं दन परत एक ठावी जगा जागांन जतों देख नैं वडा एक चाकर नैं कईक भैंम पडयौ। वो मौको देखनै एक वणी जगा गियौ और खोदनै होना री ईंट ले गयौ। मूंजी आपणे रोजीना री वेलां जदी वठै पूगों जठै ईट गड़ी थकी ही तो देख्यों के ईंट नैं कोई चारी ले गिया है। तो दख री मारयों वेंडया ज्यू व्हें ने वो घणा जोर जोर ऊ रोवा -रींकवा लागौ। वंडौ या रोवशों हामळ ने एक पाडौसी वणी तीरै आयौ और वणी रा दख री वजै पूछवा लागौ। आखर में वणी मूंजी नै भाटा री एक बटकौ देनै कियौ- " भाई! अबै रोवै- रींके मती। यो भाटा री बटकौ वणी ठकाणै गाड़ दे और मन में समझ लै के वा थारी होना री ईट हीज गड़ी है। क्यूं के जदी थै धार लीदी है के वणी ऊ कई फायदौं नीं उठावेला तौ थारै वात्तै सजी होना री ईट है वस्यौ ही भाटा री या बटको। "

धन नै काम में नी वाला ऊँ धन व्हैणों और नी व्हैणों बरोबर है।

## 29.06.3 ढूंढाड़ी : -

यह ढूंढाड़ी प्रदेश (जयपुर, टोंक, लावा, अजमेर-मेरवाड़ा के उत्तरी भाग, किशनगढ़ आदि क्षेत्र) मैं बोली जाती है। इसमें गुजराती और मारवाड़ी दोनों का प्रभाव समान रूप से पाया जाता है। ढूंढाड़ी में प्रचुर साहित्य है दादूपंथी रचनाएं इसी में सर्वाधिक है। इसमें वर्तमान के लिये ' 'छै " भूतकाल के लिये 'छो ' और भविष्य के कि 'ला ' तथा सम्बन्ध कारक के लिये 'का, की, को, का प्रयोग होता है। इस बोली का उदाहरण उसी 'कथा के रूप में निम्न प्रकार से है।

अेक मंजी कनै थोड़ों-सो धन छो। उंनै हर वगत यो ही डर लग्यौ रहै छौ क दुनियां भर का सगला चोर -धाड़ेती म्हारा ही धन पर आख गाड़ मेली छै। काई ठीक कद आ 'र लूट लेला। अपका धन में ई आफत सै बचाबा के तांई वो अएक उपाय करयौ। आपकौ सारौ टठवारौ बेच 'र वो अएक सोना की ईट मोल ली। अ 'र उंनै आपकी जगा में अएक ओला में राख दी। पण ई सौ भी उंकौ मन भरयौ कोनै। वो रोजीना उठै जा 'र देख्यातौ क सोना की ईट में कोई चोर 'र तो न ले गौ। उंने रोजीना अएक ही जगा जातौ देख बासै उंका नौकर ने बैम होगौ। अएक दिन वो भी उठै ही गयौ अर खोद 'र सोना की ईट निकाल लेगौ। वगत पर जद पूंजी उठै गयौ जठै ईट गड़ी छी तो ठीक पड़ीक ईट नैं तौ कोई चोर 'र लेगौ। ई दुख को मारयौ वो गैलौ -सो हो 'र खुब जोर सै हाय घोड़ौ करबा लाग्यौ । उं कौ रोबौ सुण 'र अेक पाड़ौसी उं कनै आयौ पाछल दाय अएक भाटौ मूंजी में दै 'र वो बोल्यो 'दादा! अब रोवै तो मतना ई भाटा का टुकड़ा में ई जगा गाड दे और इनै ही गड़ी हुई सोना की ईट समझ लें। क्यों स जद तू मन में धार बैठयौ छे क उंसै कोई फायदौ नीं उठाणौ तो थार भाव जसी सोनी री ईट उस्यो ही भाटा को ट्कड़ी छै।'

धन मैं काम में न ल्याबा सै धन को होबी न होबी इकसार छै।

#### 29.06.4 हाड़ौती:-

यह कोटा बूंदी क्षेत्र में प्रचलित है । इसका उदाहरण द्रष्टव्य है ।

अेक मन् कैं थोड़ी प्ंजी छी । ऊंनै सदा डर लागबौ करै छौ क संसार भर का सारा चोर अर धाडैती म्हारा ही धन की आड़ी चोगता झांकता रहे छै, न जाणै कद आर वै लूट लैगा । ऊंनै अपणों धन आफत सू बचावा बेई घर की अएक ईंट मोल ली । अपणौ सब कुछ बेच खोजर ऊंनै वा ईंट घर की अएक गणताऊ ठोर में गाड़ दी । पण अतना पै भी संतोस न पा 'र ऊं रोजीनां ऊ ठौर पै जा 'र देखतौ ऊका कोई ऊ सूना की ईंट नैं चोर तो नह ले गियौ । ऊनै असा रोजीना अएक ही ठौर पै जातौ देख 'र 'ऊंका अएक चाकर के कुछ बैम पड़ गियौ । ऊ डाण देख 'र अएक दिन ऊंजाग पै गियौ अर खोद 'र सूना की ईंट नै काड़ ले गियौ । मूंजी जद अपणा ठीक ऊ ही बगत पै ऊ पृग्यौ जठै सूना की ईंट घुसाड़ राखी छी तो देखी अए ईंट कोई चोर 'र ले गियौ । जद तो चंता की मारी उ गैल्यौ सौ हा 'र बड़ा जोर सू रोबा चल्लवे लाग्यौ। ऊ को यो रोबौ बरलाबौ सुण 'र अएक पाड़ौसी ऊ के नखै आयो अर ऊ का दुख कैं बेई पूछबा लाग्यौ। आखर मैं ऊनै ऊ करपण कैं ताई अएक भाटा को टूकड़ौ दै 'र की ' भाया! अब जादा रोवै -चल्लवा मत । यो भाटा को टूकड़ौ ई ही ठाम पै गाड़ दै अर मन में समझ लै क या थारी सूंना री ईंट ही गड री छै । क्यूंक जद तने या ही बच्यार ली छी कऊं सू काई फायदौ न उठावणौ ती थारै भावै जसी सूंना की ईंट छी उसो ही यौ भाटरा को टूकड़ौ"।

धन में काम में लेवे तो धन को होबो अर न होबो अएक सारखो ही छै।

#### 29.06.5 मेवाती : -

यह अलवर - भरतपुर राज्य के उत्तरी -पश्चिमी भाग ओर दिल्ली के दक्षिण में गुड़गांव में बोली जाती है । इस भाषा क्षेत्र के उत्तर में बांगड़् पश्चिम में मारवाड़ी एवं ढूंढाड़ी, दक्षिण में डांगी और पूर्व में ब्रज भाषा का प्रचार है । इस पर ब्रजभाषा का प्रभाव बहु त अधिक देखने में आता है । इसे अहीरवाटी की भाषा भी कहते हैं । इसमें वर्तमान के लिये 'है ' भूतकाल के लिये 'हो ' तथा सम्बन्धकारक के लिये का, को, की का प्रयोग होता है । इस बोली का नमूना इस प्रकार है (उसी कथा का रूप -)

अेक मांखीचूस के पे कछु माल-मतो दो । वा लू सदा आई डर बणो रह हो के सारी दुनियां का चोर और लूटणियां

मेराई धन की चगेस में है, कहा थाह जाणै कब लूट लै या सोच वा ने अपणा माल मत्ता बचाण की खातर घर को अट्टस कुट्टस बेच अएक सोना की ईंट मोल ली। वा ईंट लू बानै घर का कूणा में अएक अबीड़ी ठौर में गाड़ दी। पण या पै बी वालू थ्यावस नांय आई। वा रोजीना बाई अ बीड़ी ठौर पै जाकै देखो करें हो के कोई सोना की ईंट लू चोर के तो ना लेगों है। वा लू या छ तरें हर हमेस जातो देख वाई का नौकर लू कछु सुबौ हु यौ। उ टहलिया मौकौपा आएक दिन हूं ई रे ठाण पै लूगौ। और हूं सु सोना की ईंट खोद अपणी आमेज मैं करी। उ माखी चूस हु ई ठौर पै अपणा लाग्या बंध्या टैम पै पहुंचौ तो कहा देखें है के कोई ईंट लू चोर लेगो है। वो को अभसोच के मारे चित चिल्ला सूं उत्तर गो। उ भारी जोर जोर सू बिलख बिलख के रोण लगो। वा लू फूट फूट के रोतो सुण पोड़ोसिया एवं वा सूं रोण की बात पूछी अखीर में वानै वा मांखीचूस लू अएक रोड़ी दे कैं कही - 'भाई। अब रोवै पुकारे मत या भांटा का रोड़ा उई रै ठाण मै गांड दे और जाण लै के तेरी सोना की ईंट हुई गड़ रही है। क्यूंक जब तैंने या पुख्ता इरादौ कर लियौ है के वा सू कोई फायदो उठाणौ ई नांयतो लू जिसी सोना की ईट उसी भाटा को रोड़'।

धन को मौजू खरच न करण सू धन को होणो न होणो बराबर है।

#### 29.06.6 बागड़ी :-

यह ड्रंगरपुर और बांसवाड़ा क्षेत्र में बोली जाती है। वागड़ी पर गुजराती का प्रभाव बहुत अधिक है। इसमें 'च और 'छ ' का उच्चारण प्राय : 'स ' और 'स 'का प्राय: 'ह ' होता है। इसका एक नम्ना देखिए (उसी कथा का रूप) :

अेक सामटा में थोडोक धन हतौ । अएने दाहड़ी ई बीक लागी रेती कैं हेती जगत ना हंगरा सोर में डाकू माराज धन ऊपर नजर राखी रहचा है । ने जांण कारे आवी मै ई लूटी लहें । अएणे आपड़ा धन में आफत हो बचाववा ना हारू आपड़ो हंगसे बेसी करी मै होनानी अएक ईट वेसाती ली दी । अएणी ईट मैं अएणे धरनी अएक सानी लगा मये खोतरी धाली। अपण अटलो करवा उपरे राजी ने थई मै ई दाहड़ी अएणी जगा ऊपर जाइनै देकतों के कोई होना नी ईट मै सोरी तो ने लईग्यो हे। अएने अएमज दाहड़ी दाहड़ी अेकज जगा ऊपर जातो देकीमै अएने अएक नौकर मै कयेंक सक थ्यो ई मोको देकीमै अएक दाड़ो अएणी जगा ऊपर गयो मै खोतरी मै होना नी ईंट काड़ी लड़ गयो। सायरौ दाहड़ी ना वज् जारे अएणी जगा ऊपर गयो ज्यां ईट हंपाड़ी हती । अएणे अऐयं जई मै देक्यों के ईट मै तो कोईक सोर सोरी लई गयो है तारे दुकनो मारयो गांड़ा हरको थई मै खूब जोर थकी रोवा ने डाड़े करबा लाग्यो । अेनो ई रोवो मै डाड़े करवो हामरी मै अएक अनो पाड़ोई अेने पाये आको मै अएने दुक नो कारण पूस्योम। आकर ये अेणो सामटा अएक पाणो नो बड़को आली ने क्यु कै भाई हवे नके रोवो मै डाड़े नके करो । पाणा नो बड़को अेणीज गया उपर गाड़ी दो डाटे मै मन मये हमजी लो के ई तमारी होना नीज ईंट गड़ेली है । केम के तमें नक्की करी लीदो है के तमे अएणा थकी कर्येअए फायदों ने उठाव हो तारे हमारा हारू जेवी होना छ नी ईंट हे ओवेज आ पाणा नो बड़को है' ।

धन नै ने वेपरावा थकी धन नो हो वो नै ने होवो बराबर ज हे ।

#### 29.06.7 मालवी:-

यह समस्त मालवा क्षेत्र की बोली है और मेवाइ आदि के भी कुछ भागों में बोली जाती है। अपने सारे क्षेत्र में इसका प्राय: एक ही रूप देखने में आता है। इसमें मारवाड़ी और ढूंढाड़ी दोनों की विशेषताएं पाई जाती है। प्राचीन पट्टों परवानों में भी इसके वास्तविक स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पड़ता है इसमें वर्तमान के लिये 'है ' भूत के लिये 'थो, था, थी ' और भविष्य के लिये 'गा, गी, गो का प्रयोग किया जाता है। इसका एक नमूना देखिए-

अेक पूंजी रै कनै थोड़ों माल थो। वणी मैं हदाई ओ डर लाग्यों रेतो थो के आखी दुनिया रा चोर मैं डाक् म्हाराज धन पर आंख्या लगायां थका है, नी मालम कदी आई मै वी लूटी लेगा। वणे आपणा माल भत्ता मै ई कट कट ती बंचावानै घर रा सब तांगड़ा बेचा-बेची करी छ मै होनारी अएक ईट मोल ली दी। वणी ईंट मै वीअए घर री एक छाने री जगा में गाड़ी राखी। पण अतरा पर भी वीनै धीरप नी आई मैं रोज वर्णी जगा पर जाई मै देखतों के कठ होना री वा ईट तो कोई चोरी मै नी गयो। वणी मै अणी तरे रोज -रोज अेकज जगा पर जातो देखी मै वींरा अएक मौकर ने कईक भैम पड़यौ। मोको देखी मै ऊ अएक दन वणी जगा गयो और सोना री ईट खोदी मै काड़ी गयो। मूंजी जदी आपणी बंधी वगत पणी जगा पोंच्यों जठ ईट गड़ी थकी थी तो देख्यों कें ईंट ने कोई चोरी गयो है। पछै तो दुख मै मारे वेडो वई मैं उग्घणा जोर जार ती हांगड़ा पाड़ी पाड़ी मै रोवा लागों। वीरों रोवणों - रीकणों हुणी मै अएक पड़ौसी वीं कनै आयो मै ई दुख रो कारण पूछवा लागो। अखर वणी मूंजी मै भाटा रो

एक टुकड़ों दई नै कीयो - ' अए भंई! अबे रो मती । यो भाटा रो टुकड़ो वणीज जगा गाड़ी दे नैं मन में हमजी ले के या थारी होना री ईंट ज गड़ी थकी है । क्यूं कै जदी थे यों धारी लीदो कै वणी ती कई फायदों नी उठावणों तो थारे भावते तो जसी ना होना री ईंट थी वसोज यो भाटा रो टुकड़ो है ।

## 29.07 राजस्थानी भाषा की लिपि

जिस प्रकार राजस्थानी भाषा के शब्दों की व्यंजना शक्ति और उसके साहित्य की व्यापकता आदि अनेक विशेषताएं हैं, उसी प्रकार उसकी अपनी लिपि की भी विशेषताएं हैं। राजस्थानी लिपि अधिकतर देवनागरी लिपि से मिलती नै। यह लिपि लकीर खींचकर घसीट रूप में लिखी जाती है। राजस्थानी लिपि का स्वरूप है। (संलग्न (1) व (2))

समग्रत : यह कहा जा सकता है कि राजस्थानी एक समृद्ध भाषा है जिसका उद्भव 9वीं शताब्दी से माना जाता है ।इसके साहित्य का विपुल भंडार है । इसका अपना स्वतंत्र व्याकरण है! सीताराम लालस द्वारा सम्पादित नौ जिल्दों में प्रकाशित वृहत् शब्दकोश है । जिसमें लगभग दो लाख शब्द समाहित हैं । यों तो इस भाषा की 72 बोलियां हैं परन्तु मोटे रूप में 7 बोलियां हैं । जो अपने-अपने क्षेत्रों में प्रचलित है । इन सभी बोलियों में कोई खास अन्तर नहीं है केवल उच्चारण भेद है । इसी तरह इसकी लिपि की भी अपनी विशेषता है ।

सुनीति कुमार तो भोली भाषा समूह को मालवी की भांति राजस्थानी में टी सिम्मिलित करते हैं परन्तु अन्य विद्वान इस मत से विवाद रखते हैं । परन्तु सुनीति कुमार इसके अतिरिक्त सौराष्ट्री तथा पंजाब -कश्मीर की गूज्जरी को भी राजस्थानी के अन्तर्गत मानते हैं । वे बंजारी भाषाओं का मूलाधार भी राजस्थानी को मानते हैं । पहाड़ी बोलियों का आधार भी राजस्थानी कहा जाता है ।

(1) मानक रतप अआइई न ऊ ऋ ओ औ ओ अं अं: क व ग घड., -च (अ) छ (छ) ज ७ अ, र ग ८० ८० ८० व प प ल नम, प र प ल व स (स) ह

(in सामान्य (क्रीक) रूप भ्यादह (ह) न के (3) या यो यो वनम् यन त्र ळ व 4 (H) E, 923849026-90 आंजकत्य बीवल त्य की छोड़ शेष मारे वर्ग देवनागर। 31/4 (12) 214 X1

आजकल केवल 3 को छोड़कर शेष सारे वर्ण देवनागरी में अपना लिये गये हैं।

## 29.08 टैसीटोरी का राजस्थानी भाषा का योगदान

एल.पी. टैसीटोरी राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के वैज्ञानिक अनुसंधान का पथ प्रशस्त करने वाले इटली निवासी थे जो भारत में आकर फिर राजस्थान में बस गये थे। उनका असमय देहान्त बीकानेर में हो गया था। उन्होंने एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के तत्वाधान में 1914 ई. से अपना राजस्थानी भाषा के ग्रन्थों का सर्वेक्षण कार्य प्रारम्भ किया। इस उद्देश्य से वे जोधपुर आये और उन्होंने 1917 ई. में सोसायटी की ओर से अपना तब तक का सर्वेक्षण कार्य प्रकाशित करवाया। तत्पश्चात वे बीकानेर चले गये जहां तत्कालीन नरेश महाराजा गंगा सिंह ने उन्हें वांछनीय प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान किया। सर्वेक्षण सम्बन्धी अन्य दो पुस्तकें, 9 गद्य एवं दो पत्र बीकानेर में ही लिखी गयी। इनका प्रकाशन सोसाइटी द्वारा 1918 ई. में किया गया।

टैसीटोरी द्वारा राजस्थान में रचित डिंगल एवं पिंगल भाषाओं के साहित्य का भेद भली भांति समझकर डिंगल ग्रन्थों का सर्वेक्षण अलग से किया गया । इनके प्रयासों के माध्यम से पृथ्वीराज राठौड़ कृत वेलि, राव जैतसी रो छन्द, रतन सिंह खीवावत री वेलि, मुहणोत नैणसी दी ख्यात, दयाल दास री ख्यात् देशदर्पण, अजीतविलास, ढोला-मारू रा दूहा, रतनसिंह री वचनिका आदि ग्रन्थ प्रकाश में आये जो आगे चलकर राजस्थानी भाषा के गौरव-ग्रन्थ प्रमाणित हुए । टैसीटोरी के इस योगदान के लिये राजस्थान वासी सदैव ऋणी रहेंगे ।

## 29.09 इकाई सारांश

राजस्थानी भाषा का मूल स्रोत अपभ्रंश है और गुजराती एवं राजस्थानी, दोनों का उस पर समान अधिकार है। संवत् 1500 के आसपास राजस्थानी के नये रूप को स्वीकार करना चाहिये। ' 'कान्हड़दे प्रबन्ध ' की रचना में राजस्थानी का सही रूप देखा जा सकता है। संवत् 1500 से पूर्व चारण शैली का गद्य प्राप्त नहीं होता है। 'वचिनका ' में सर्वप्रथम एवं सुन्दर गद्य का उदाहरण देखने को मिलता है जो उसके बाद क्रमशः: विकास को प्राप्त होता गया। ऐतिहासिक काव्यों प्रचलित की परम्पराएँ विशेषत: चारण साहित्य में प्राप्त होती है। राजस्थान की लोक काव्य परम्परा जिसमें 'लखन सेन पदमावती चौपाई ' एवं ढोला मारू प्रारम्भिक काव्य है, समय के साथ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती जाती है। भिक्त आन्दोलन के संतों ने इसमें महान योगदान दिया है।

राजस्थानी की मुख्य बोलियाँ हैं, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मेवाती, ढूंढाड़ी, मालवी, बागड़ी एवं हाडौती हैं । ये बोलियां अपने -अपने क्षेत्र विशेष के कारण भी सम्बोधित होती है । जैसे, कोटा बूंदी का क्षेत्र हाडौती कहलाता है, अत: यहां की बोली भी हाड़ौती है बही -खातों, सरकारी दस्तावेजों एवं पत्र व्यवहार की भाषा भी इन्हीं बोलियों की है परन्तु प्रशासनिक दृष्टि से उन्हें कामदारी कहा जाता है । व्यापार वाणिज्य की यही भाषा महाजनी एवं मोड़ी में जतलायी जाती है । अगर इनका कोई अध्ययन करना चाहे तो राजस्थान राज्य अभिलेखागार की सामग्री में देख सकता है ।

## 29.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

### (अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर आप 150 शब्दों में दीजिये।

- (1) हाडौती बोली का परिचय दीजिये ।
- (2) गुजराती भाषा का प्रभाव राजस्थानी में किन-किन प्रान्तों में है ।
- (3) राजस्थानी जैन साहित्य पर संक्षिप्त प्रकाश डालिये ।
- (4) राजस्थानी भाषा के उद्भव पर संक्षेप में अपने विचार लिखिये ।
- (5) टैसीटोरी के राजस्थानी भाषा में दिये गये योगदान पर टिप्पणी कीजिये ।

## (ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये ।

- (1) डिंगल साहित्य पर टिप्पणी लिखिये।
- (2) मारवाडी बोली के क्षेत्र एवं विशिष्टता पर प्रकाश डालिये ।
- (3) राजस्थानी के समृद्ध लोक साहित्य पर अपने विचार लिखिये ।
- (4) राजस्थान के प्रशासन एवं व्यवसाय की पत्रावलियों की लिपियों पर टिप्पणी लिखिये।

## इकाई सं. 30 "राजस्थान का वात साहित्य"

#### इकाई संरचना

- 30.01 उद्देश्य
- 30.02 प्रस्तावना
- 30.03 पृष्ठभूमि एवं परम्परा
- 30.04 स्वरूप
- 30.05 वर्गीकरण
  - 30.05.1 वीरता प्रधान
  - 30.05.2 प्रेम प्रधान
  - 30.05.3 हास्य प्रधान
  - 30.05.4 अलौकिक प्रधान
  - 30.05.5 प्रतीकात्मक प्रधान
  - 30.05.6 नीति प्रधान
  - 30.05.7 धर्म प्रधान
  - 30.05.8 चरित्र प्रधान
  - 30.05.9 वातावरणीय तत्व
  - 30.05.10 भाषा की विविधता
  - 30.05.11 वात में वात
  - 30.05.12 महाजनी जीवन धारा
- 30.06 सामाजिक स्थिति का मान
- 30.07 राजस्थानी बातों के कुछ प्रमुख शीर्षक
- 30.08 इकाई सारांश
- 30.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

## 30.01उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ पायेंगे कि : -

- (1) राजस्थान का गद्य साहित्य भी कितना प्राचीन एवं समृद्ध है।
- (2) लोक कथाओं को किस प्रकार मौखिक से लिपिबद्ध स्वरूप में लिया गया है।
- (3) वात साहित्य कितना विविध एवं आकर्षक है।
- (4) समकालीन समाज को समझने के लिये यह अपने विस्तृत एवं शिक्षाप्रद से कितना सहायक है।

#### 30.02 प्रस्तावना

राजस्थानी भाषा का गद्य साहित्य बहु त पुराना एवं विविध आयामों को लिये हु ए हैं। विशेषकर 14वीं शताब्दी के पश्चात इसकी अनेक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। गद्य साहित्य का मोटे रूप से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम, ख्यात (ऐतिहासिक लेखन), बात (पुरानी कहानियाँ- किस्से)

एवं विगत (विवरण) । ख्यात व विगत का साहित्य तो काफी प्रकाश में आया है लेकिन राजस्थानी के वात साहित्य पर बहुत कम लिखा गया है । जबिक हस्तलिखित पोथियों में इसकी बहुत सामग्री बिखरी पड़ी है । उदाहरणार्थ, बीकानेर में लालगढ़ महल स्थित अनूप संस्कृत पुस्तकालय में इस लेखन की विपुल सामग्री पड़ी है । टैसीटोरी व श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चूडांवत ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है । श्री मनोहर शर्मा एवं श्रीलाल नथमल जोशी ने अपने भागीरथी प्रयत्नों से इस साहित्य का प्रकाशन कराया है ।

इस वात साहित्य में बातों या कहानियों की भरमार है पर अधिकार वे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हैं । राजस्थान के शौर्य, त्याग व प्रकृति से संघर्ष की गाथाएँ इस साहित्य में मिलती हैं । धार्मिक गाथाएँ व सांस्कृतिक परम्पराओं का विषय प्रधान भी रहा है। मध्यकाल के भिक्ति व रीति काल का भी इस पर प्रभाव पड़ा है । ये सभी कहानियाँ या चर्चाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी चली हैं व इसने एक विशाल मौखिक साहित्य का निर्माण भी किया है । इन 'बातों ' ने राजस्थान के लोगों के चरित्र निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है । आज भी बहुत से लोग विशेषकर सामान्य जन एवं पर्यटक तो इन 'बातों' के दवारा ही राजस्थान के इतिहास एवं संस्कृति का परिचय पाते हैं ।

## 30.03 पृष्ठभूमि एवं परम्परा

राजस्थान ही नहीं भारत में कहानी या 'बात' सुनाने व सुनने की परम्परा प्राचीन है । वेद व उपनिषद में 'कहानी ' के तत्व विद्यमान हैं । पुराण तो कथा तत्व से सुसज्जित है । जातक व जैन कथाएँ भी इस दिशा में पीछे नहीं हैं । अपभ्रंश जिससे राजस्थानी का जन्म हु आ, कथाओं से पूर्ण हैं कहने का तात्पर्य यह है कि राजस्थानी वात साहित्य व कहने-सुनने की परम्परा समृद्ध एवं ऐतिहासिक है । आज भी राजस्थान के वासी रात को चौपाल, चौराहे या किसी थल पर बैठकर बातें या कथा सुनने-सुनाने का आनन्द लेते हैं । अगर इन कथाओं में 'छन्दों ' का पुट आ जाये तो उसका विवरण और रुचिकर हो जाता है । इन बातों या लोक कथाओं का संकलन लिखित रूप में हु आ है परन्तु आश्चर्य की वात है कि किसी ने भी लेखक के रूप में अपना नाम प्रस्तुत नहीं किया है । इस प्रकार यह साहित्य समाज की सम्पित है और समाज की ही धरोहर है। बात साहित्य अपने आकार में संक्षिप्त ओर विस्तृत दोनों ही हैं । कुछ 'बातें' तो बहुत ही संक्षिप्त हैं वहीं कुछ बड़ी ।

इससे कि पूर्व राजस्थान की बातों के अन्य बिन्दुओं पर गौर करें, उसके स्वरूप को जानना आवश्यक है ।

#### 30.04 स्वरूप

इस पक्ष को निम्न बिन्दुओं में समेटा जा सकता है : -

- (i) अधिकतर बातों का विषय ऐतिहासिक है। इसके पात्र, कथा वस्तु, घटनाक्रम आदि सभी कुछ-कुछ अपवादों को छोड़कर इतिहास की पृष्ठभूमि से ही उभरे हैं।
- (ii) कथा -विषय धार्मिक भी है । पौराणिक कथाओं का विवरण स्वतन्त्र रूप से तथा अन्य विषयों के भाग के रूप में भी उभरकर सामने आया है ।

- (iii) बातों का नीतिगत स्वरूप भी स्पष्ट है । कई बातों में नीति का स्पष्टीकरण किया गया है । वैसे भी यहां के जन-व्यवहार में इस बिन्दु पर बल दिया जाता रहा है कि 'वात नीति की करो अनीति की नहीं ' ।
- (iv) अनेक 'बातों' में अलौकिक पक्ष का भी उजागर खूब हुआ है । 'दर्शन ', चमत्कार ' व विलक्षण घटनाओं का उल्लेख इन बातों के गैरू एतिहासिक पक्षों की ओर ध्यान दिलाता है । इसके अतिरिक्त परियों की कथाएँ, अप्सराओं का आगमन, साधु सन्तों के वरदान का परिणाम आदि भी इसके विवरण की विशेषताएँ हैं ।
- (v) इन बातों में 'विवरण' पक्ष प्रमुखता से उभरा है और साथ ही अधिकांश बातें 'अन्य पुरुष' के दवारा ही और कभी-कभी उन पुरुषों के वार्तालाप के माध्यम से प्रस्तुत की गयी हैं।
- (vi) यद्यपि वात साहित्य मूलत : गद्य श्रेणी में आता है । लेकिन इसमें बीच-बीच में दोहों व छन्दों के प्रयोग एवं प्रचलन से पद्य की विशेषता भी पुष्ट है ।
- (vii) बात साहित्य कई दृष्टियों से लोक साहित्य भी है । इसमें जन -जीवन के अनेक पक्षों का सुन्दर विवरण आया है।

## 30.05 वर्गीकरण

बात साहित्य के विपुल भंडार का निम्न दृष्टि से वर्गीकरण करने का यत्न किया जा सकता है:-

#### 30.05.1 वीरता प्रधान : -

अधिकतर राजस्थानी कथाएँ ऐतिहासिक होने के साथ-साथ वीरता प्रधान हैं। इन कथाओं में राजस्थान के उन वीरों का चित्रण हु आ है जिन्होंने अपने राज्य, भूमि, किले, स्वाभिमान, वचन या किसी आदर्श के लिये युद्ध में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया अथवा उसकी प्राप्ति हेतु प्राण त्याग दिये। इस दृष्टि से, 'पताई रावण री वात, उडणे प्रथीराज री वात, महाराव श्री अमरसिंह जी राठौड़ री वात, राजा करणसिंह जी रै कंवरा री वात, आदि आदि। अमरसिंह राठौड़ री वात में यह उजागर किया गया है की किस प्रकार अमरसिंह अपनी आनबान के लिए बादशाह शाहजहाँ की सैना से उनके दरबार में ही भिड़ गया व अन्तता मृत्यु को प्राप्त हु आ। शारीरिक विलक्षण शक्ति के लिये पृथ्वीराज (चित्तौड़) एवं कुंअर पदमसिंह व केसरी सिंह (बीकानेर) की बातें उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं। पृथ्वीराज को तो उड़ने वाला घोड़ा कहा जाता था और केसरी सिंह तथा पदमसिंह बलिष्ठ व्यक्ति थे और आदमी से भी बलवान समय है, यह बिन्दु 'वात उहरू री ' में स्पष्ट किया गया है।

#### 30.05.2 प्रेम प्रधान : -

राजस्थानी साहित्य प्रेम प्रधान भी है । बल्कि मध्ययुगीन समाज व साहित्य वीरता, प्रेम व रहस्यवाद के तत्वों के ताने -बाने में बुना गया है । यहां मनुष्य के प्राण में भी प्राण प्रेम है तथा यहां भी प्रेम संकीर्ण नहीं है बल्कि त्याग की भावना से आदर्शमयी एवं व्यापक है । सांखल कुंहर सी अर भर मल री वात ' चच राठौड़ री वात, वीझरे अहीर री वात, आदि प्रेम प्रसंगों के उदाहरण हैं । 'ढोला-मखण री वात ' तो जरा विख्यात है । प्रेम-प्रसंगों को सुग्गों एवं सारिकाओं के माध्यम से भी कहा गया है जिसमें सुग्गा पुरुष व सारिका स्त्री वाणी में बोलती है 'दम्पति विनोद ' को इन्हीं माध्यमों से रचा गया

है । इसके अतिरिक्त 'नागजी -नागवन्ती, खींवजी आभलदे, जस्मादे ओढण, लखा फूलाणी, राणों का छवो, रतना हमीर, मूमल महेन्दरों, निहालदे सुलतान, बींझा सोरठ एवं जेठवा - ऊजली, सभी में प्रेम की प्रशस्ति गायी गयी है । श्री कोमल कोठरी के शब्दों में समाज की नानारूपात्मक परिस्थितियों एवं घटनाओं के बीच में अजर, अमर और शाश्वत प्रेम के पुष्प को प्रस्फुटित किया गया है । इन प्रेम कथाओं में प्रेमियों का अशक्त, सहज ओर मानवीयता का प्रबलतम पक्ष अभिव्यक्त हुआ है।

#### 30.05.3 हास्य प्रधान : -

साहित्य का यह प्रमुख रस भी राजस्थानी में अछूता नहीं है । वैसे भी इन बातों के कथानक का अन्त साधारणतया सु:खद है। अगर नायक -नायिका ने आदर्शों व प्रेम को लेकर प्राणों का त्याग भी कर दिया है तो भी उसे दु:खद नहीं माना जाता। राजस्थानी सामन्ती जीवन की यह एक प्रबल विशेषता है । 'चांड रै बाबत फोफाणंद री वात ' हास्य रस की प्रतिनिधि कथा है ।

#### 30.05.4 अलौकिक प्रधान :-

राजस्थानी बातें अलौकिक, आश्चर्य दैनिक व रहस्यमयी तत्वों से भी भरपूर है । इसके अतिरिक्त चर्चित कथाएँ, 'सिंहासन बतीसी ' का भी इन कथाओं पर प्रभाव है । 'बेताल पंचशक्ति का ' (बेताल पंचीसी) का भी मारवाड़ी गद्य में अनुवाद है । इन राजस्थानी लोक कथाओं में कई स्थलों पर यह वृतान्त आये हैं कि विभिन्न राजवंशों की उत्पत्ति अप्सराओं से हुई है जो देवलोक से आयी थीं । 'छाहड़ पंवार री वात ' की कथावस्तु 'पुरुखा अर उर्वशी ' के कथानक से प्रभावित है । इस कथा में यह बतलाया गया है कि चहोटन के पंवार चाहड़ के दो पुत्रों की उत्पत्ति एक अप्सरा के गर्भ से हुई है । वस्तुत : इन गाथाओं में भूत -प्रेत, शकुन, स्वप्न, देवी -देवता, आकाशवाणी, जाद्-टोना आदि कितनी ही अलौकिक बातों का समावेश मिलता है ।

#### 30.05.5 प्रतीकात्मक प्रधान : -

राजस्थानी बातों मे स्त्री एवं पुरुष के अतिरिक्त पशु -पक्षी व यहां तक कि पेड़ -पौधों को भी कनाथक के पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है । मानव के उनके साथ संवाद या वार्तालाप हुए हैं । आपको पूर्व में इस वात का संदर्भ दिया गया है कि किस प्रकार तोता-मैना के माध्यम से 'दांपत्य विनोद ' का कथानक रचा गया है । पिक्षयों के साथ तो पूर्ण विश्वास करके नायिकाओं ने अपने प्रेम-विह्वल वाणी में प्रिय को संदेश भेजे हैं । कोकिल, किर, भ्रमर ओर बादल के अतिरिक्त प्रवासी पक्षी 'कुरजां ' ने भी विहरणी की पीड़ा को पहचान कर उसके कार्य को सम्पादित किया है । इसी क्रम में 'डाढालौ सूर ' एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कथा है । यह प्रतीक शैली में लिखी गयी एक वीरता की कहानी है । इसमें वीरोचित्र कार्यों का आरोपण एक सूअर परिवार पर किया गया है । सूअर के जीवन से उन्हीं घटनाओं अथवा व्यवहारों को लिया गया है जो मनुष्य के कार्यों के समतुल्य रखे जा सकते हैं । इस प्रकार बातों में मनुष्य का अन्य प्राणियों के साथ भावनाओं का सीधा आदान प्रदान एक बहुत बड़ी विशेषता है । जिससे भावानुभृतियों को अधिक विस्तार मिल सकता है।

#### 30.05.6 नीति प्रधान : -

राजस्थानी वातों का समाज को बहु त बड़ा योगदान है। प्राचीन काल में शिक्षा और ज्ञान अर्जित करने के लिये ये वाते एक सशक्त माध्यम बनी। शासक एवं शासित दोनों वर्गों के अपने - अपने संस्कारों का निर्माण करने के लिये इन बातों में नीति तत्व बहु त ही प्रभावशाली रहा है। इन बातों में वेद, ब्राह्मण, उपनिषद एवं पुराणों से बहु त ही ज्ञानवर्द्धन एवं नीतिगत बातें ली गयी है। इसी प्रकार बौद्ध जातक कथायें तथा हितोपदेश की कथाएँ भी सिम्मिलित हैं। जैन ग्रन्थों की कहानियाँ भी इनमें घर बनाये हुई हैं। मालवा के प्रसिद्ध राजा भोज की बातें भी उभरकर सामने आयी हैं। 'राजा भोज, माध पिडत अर डोकरी री बात ' एक निराली रचना है। इस श्रेणी की अन्य बातें हैं 'राजा भोज री पनरमी विद्या त्रियाचरित 'लुकमान हकीम उपणौ बेटे कूं नसीहत, बीरबल री वात, राजा भोज खाफरे चोर री वात, बगले हंसणी री वात, बगड़ावता री वात, आदि आदि।

#### 30.05.7 धर्म प्रधान: -

जैसाकि ऊपर लिखा जा चुका है राजस्थानी वातों में वेद, उपनिषद, पुराण तथा बौद्ध एवं जैन धर्म ग्रन्थों से अनेक वार्ताएँ ली गयी हैं । व्रत, तीज - त्योहार, दान, पुण्य, स्वर्ग -नगर, पुनर्जन्म, तीर्थ, आदि विषयों पर अनेक प्रसंग राजस्थानी बातों में आये हैं । दान की महिमा तो इन कथाओं में बहुत गायी गयी हैं । इसके अतिरिक्त राजस्थानी लोकदेवताओं पर भी अनेक कथाएँ रची गयी है । जिनमें रामदेवजी तंवर री वात, पाब्ज़ी री वात, रुपांदे री वात, आदि आदि । लेकिन ये कथाएँ साम्प्रदायिक नहीं हैं । "कंग्रे बलोच री बात ', 'मोरडी मतवाली री बात ', 'तमाइची पातशाह री बात ', कांवलो जोइयो ने तीड़ी खरल री बात ' मुस्लिम समाज के विभिन्न पक्षों को दर्शाती है कुछ कथाएँ पुराणों आदि से न लेकर उनके कलेवर में अपना 'बात' कहती हैं । 'पलक दरियाव की बात ' को पुराणा सम्बन्धी वात कहा गया है और यह वात भगवान विष्णु के अलौकिक कार्यों की प्रशस्ति के रूप में लिखी गयी है ।

#### 30.05.8 चरित्र प्रधान : -

वैसे जो कथाओं का यह पक्ष नीति एव धर्म प्रधान तत्वों में उभरकर आया है लेकिन मध्ययुगीन राजस्थानी बल्कि राजपूती समाज की कुछ विशिष्ट अवस्थाओं को इसमें अलग से पहचाना जा सकता है । उदाहरणार्थ, स्वामी भिक्त या 'सामधर्म ' मनुष्य के उच्चतम गुणों में देखी गयी है। और इसके विरुद्ध जाने वाले को तिरस्कृत किया जाता रहा है । वस्तुतः चिरत्र को सबसे अधिक मान दिया गया है। लोगों को अपनी वात, वचन की प्राणों या सम्पित से अधिक चिन्ता थी । अपनी वात को पूरा करने के लिये व्यक्ति जमीन - आसमान एक कर देता था । माता -िपता, गुरु व कुल देवताओं की मर्यादा श्रेष्ठ समझी जाती थी । इन चारित्रिक विशेषताओं के कारण शत्रुता या 'वैर ' का पक्ष भी समाज व राजनीति में प्रबल रहा । वैर को चुकाने की परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रही। वैसे जो परिवार के सदस्य इस प्रतिज्ञा को पूरा करते थे परन्तु उदाहरण है कि धर्म -भाई व मित्रों ने इस वचन को पूरा किया है ।

#### 30.05.9 वातावरणीय तत्व: -

यह तो एक मान्य वात है कि साहित्य समाज के साथ -साथ अपनी भौगोलिक एवं वातावरणीय स्थिति का चित्रण भी करता है। इन बातों में राजस्थान के सम्पूर्ण संभाग के अतिरिक्त मालवा, गुजरात एवं सिन्ध प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का अच्छा परिचय मिलता है। मरू प्रदेश या रेगिस्तानी क्षेत्र की मध्यकाल एवं उसके परवर्तीकाल में क्या स्थिति थी, पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है पूर्व मध्यकाल में हाकड़ा नदी राजस्थान व सिन्ध में पूरे वेग से बहती थी, का प्रमाण इन बातों में ढूँढा जा सकता है। 'गुजरात देश ' पर तो एक अलग से वात लिखी गयी है इसके अतिरिक्त उत्तरी राजस्थान में बाराड़ देश का विवरण भी उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त मौसम के प्रत्येक मिजाज का परिचय भी प्राप्त होता है। मरूप्रदेश में अकाल की स्थिति किस प्रकार निरन्तर व भयावह बनती जाति थी। का सहज भान हो सकता है। परन्तु फिर भी मरू प्रदेश की अपनी सहजता सौन्दर्य एवं विशिष्टता थी, इसका दम्य भी इन्हीं बातों से जाना जाता है।

#### 30.05.10 भाषा की विविधता : -

राजस्थान में प्रसिद्ध कहावत है कि प्रत्येक 12 कोस पर क्षेत्र विशेष की बोली बदल जाती है और वात साहित्य इसका मोटे रूप में प्रमाण है । यहां तक कि जोधपुर एवं बीकानेर में कहीं गयी बातों में शब्दों का चयन अनेक बार अलग हो जाता है । काल के अन्तर का भी प्रभाव है । संभागीय विविधता के अतिरिक्त पाडौंसी प्रदेशों की भाषाओं व बोलियों का भी प्रभाव है । इन सभी अन्तरों को हमने राजस्थानी भाषा की इकाई में अध्ययन किया है । वात साहित्य संस्कृति में मुख्य रूप से गुजराती, सिन्धी, मालवी, बागड़ी एवं बृज का प्रभाव स्पष्ट: दिखायी देता है । फारसी एवं उर्दू के शब्दों का भी पर्याप्त, प्रयोग हु आ है । रुचिकर वात यह है कि एक ही कथा में कई बोलियों एवं भाषाओं का प्रयोग हु आ है । अगर दिल्ली के मुस्लिम शासकों या उनके प्रतिनिधियों की वात है तो फारसी व उर्दू में संवाद बोले गये हैं । वही राजस्थानी पात्र अपनी स्थानीय बोली बोलते हैं । चूंकि सिंध, सौराष्ट्र, गुजरात एवं राजस्थान एक बृहत सांस्कृतिक इकाई का निर्माण करते हैं, इस कारण गुजराती व सिन्धी शब्दों की भरमार है ।

#### 30.05.11 बात में बात : -

भारतीय कथा साहित्य की ही एक विशेषता है कि कथा में कथा कही जाती है। राजस्थानी वात साहित्य भी इस परम्परा से अछूता नहीं हैं। यहाँ भी वात में वात है मूल कथा में दूसरी कथाएँ आकर जुड़ जाती है एवं उन सभी कथाओं से एक माला पूर्ण होती है। इस परम्परा को आगे बढ़ाने वाली मुख्य बातें हैं, 'चातर री बात ', 'राणी चौबोली री बात ', अकल री बात ' आदि। कथा में कथा की परम्परा जनमानस को भी आकर्षित करती है और इसमें पात्र व्यापक रूप से उभरकर सामने आते हैं। अकबर -बीरबल, राजाभोज एवं उसके दरबार के बुद्धिजनों की कथाओं जैसा ही हाल इन राजस्थानी बातों में दृष्टिगत होता है।

#### 30.05.12 महाजनी जीवनधारा तत्व : -

राजस्थानी वात साहित्य में ऐसा नहीं है कि यह राजनैतिक चिरत्रों, घटनाओं एवं युद्ध स्थलों तक ही केन्द्रित है । इसमें उस काल की वाणिज्य व्यापार की स्थिति तथा साथ ही व्यापारी एवं उनकी गतिविधियों का भी अच्छा चित्रण मिलता है । ' 'बीजड़-वीजोगण री बात ' और हंसराज बछराज री वात उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है । इन बातों में देश की प्राचीन वाणिज्य परम्पराओं का विवरण है और इनमें बौद्धधर्म एवं जैनधर्म की कथाओं का भी प्रभाव दृष्टिगत होता है । वात साहित्य में जहां दान -दिक्षणा विशेषकर महाजनी वर्ग से का उल्लेख प्रशंसा के भाव से है वही व्यापारी वर्ग की कंजूस प्रवृत्तियों पर भी अच्छा व्यंग है । इस साहित्य से जहां तत्कालीन विणिक प्रवृतियों एवं स्थितियों का पता लगता है वही समाज में इनकी सम्मानजनक स्थिति का भान भी होता है ।

## 30.06 सामाजिक स्थिति का भान

वात साहित्य से तत्कालीन सामाजिक संरचना तथा उसमें विभिन्न वर्गों की सामाजिक स्थिति का अच्छा भान होता है। जहां विभिन्न वर्गों के मध्य परस्पर सामंजस्य का पता चलता है वहीं व्यवहार में आये वर्ग विभेद व उससे जुड़ी प्रचलित मान्यताओं का परिचय भी मिला है। नैणसी द्वारा लिखित 'परगना री विगत ' में जो पवन जातियाँ आयी है उनकी स्थिति का वर्ग विशेष में स्थान का विस्तृत ज्ञान इस वात साहित्य से हो जाता है। ऐसा लगता है कि मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात आये प्रशासनिक एवं आर्थिक परिवर्तनों ने समाज में वर्गीकरण भी अनेक परतों को जन्म दिया है। इसके अतिरिक्त बहु त सी बातें जिनका हम उल्लेख इस इकाई में प्रस्तावित विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत नहीं कर सके, विशेषकर धार्मिक एवं सांस्कृतिक विश्वासों एवं मान्यताओं के बारे में, उनका पुन: संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है।

राजस्थान में विभिन्न क्षेत्रों या वर्गों के उपास्थ देवी देवता भी भिन्न होते थे। राजस्थान के शासकों में जहां राठौड़ शासकों की कुलदेवी चक्रेश्वरी (नागणेची) थी। वहां का मेवाड़ का महाराणा श्री एकलिंगजी को ही राज्य प्रदान करने वाला मानता था। इसी प्रकार सब ही विभिन्न राजपूत खांपों की अपनी-अपनी उपास्थ देवी होती थी। इसके अतिरिक्त अपनी - अपनी भावना और विश्वासों में आस्था-वैचित्रय सर्वत्र विदयमान था, जो तत्कालीन जीवन में स्पष्ट पाये जाते रहे।

राजस्थान के लोगों में मृत्यु के बाद आत्मा पुनर्जन्म में पूर्ण विश्वास था । अनेक कथाओं में पिछले जन्म की कथाओं का उल्लेख मिलता है । संभवत : यह धारणा भी बलवती रही थी कि मृत्युपरान्त जीवन में भी पति के साथ रहने की इच्छा से ही वीरांगनाएं सती होने को समुत्सुक होती थीं । युद्ध के पहले भी योद्धागण अगले जन्म में पुन : मिलने की वात सोचते और कहते थे ।

17 वीं और 18 वीं सदी के वात साहित्य में तत्कालीन राजपूत समाज और जीवन की कई झांकियां देखने को मिलती हैं। साथ ही वात साहित्य में तत्कालीन धार्मिक मान्यताओं और विश्वासों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता हे। हिन्दू बहु - देववादी रहे हैं। मूर्ति पूजा में पूर्ण विश्वास प्रकट होता है। विभिन्न देवी -देवताओं की मूर्तियों मंदिर में स्थापित की जाकर उनकी पूजा की व्यवस्था होती थी। इस समय तक पुजारी परम्परा सुदृढ़ रूपेण स्थापित हो चुकी थी। प्रत्येक मंदिर का एक या अधिक पुजारी होते थे। मंदिर में स्थापित मूर्ति की पूजा आदि ही उनका मुख्य धार्मिक कर्तव्य होता था। उनकी जीविकोपार्जन के लिये राज्य अथवा समाज की ओर से व्यवस्था जी जाती थी। यदयपि मुसलमानों

द्वारा अनेक बार मंदिरों को ध्वंस किया गया, फिर भी हिन्दुओं का मूर्तिपूजा में अटूट विश्वास बना रहा।

हिन्दू अवतारवाद में पूर्णतया विश्वास करते थे । प्न: अपने विश्वासान्सार विभिन्न देवी -देवताओं की साधना करते थे। मानव में दैवीशक्ति का प्रस्फुटन अथवा आवेश पर भी पूरा विश्वास था, जिससे जनसाधारण के लिये बलि हो जाने अथवा उनकी रक्षार्थ निरन्तर प्रयत्नशील रहने वाले पर -प्ंगवों को लोक देवता के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया जाता था । जो व्यक्ति विशेष मानव समाज के जनहित अथवा निर्बल और पूज्य के रक्षणार्थ या अपने वचनों को निबाहने के लिए चमत्कारिक कार्य कर दिखाता हु आ जीवन की बिल देता था । उसके मरणोपरान्त उसको देवता के रूप में मान्य कर उसकी पूजा आरम्भ हो जाती थी । राजस्थान आदि क्षेत्रों में रामदेव, हरमू सांखला और पाबू राठौड़ आदि कुछ व्यक्तियों की गणना बाद में लोक देवता के रूप में की जाने लगी । लोक देवताओं के अतिरिक्त ऋषियों, जोगियों अथवा संत - साधुओं में भी हिन्दू जनता का विश्वास था । देवी -देवताओं के प्रमुख भक्त के रूप में मानकर उनकी भी सेवा की जाती म्सलमानों के भारत आगमन और यहां उनके आधिपत्य की स्थापना के बाद भी हिन्दू यथावत मूर्तिपूजक बने रहे थे। यों राजनैतिक मध्यकालीन राजस्थान में प्रायः सभी लोगों की अन्धविश्वासों में पूर्ण आस्था थी । वे जोगियों के चमत्कार, ज्योतिषियों की भविष्यवाणी, मंत्र-तंत्र, शक्नों और स्वप्नों आदि में बहुत विश्वास करते थे । युद्धाभियान में हर समय शकुन-शास्त्री साथ रहते थे । यदि युद्धाभियान मार्ग में अपशकुन हो जाता तो पुन : अच्छे शकुन होने तक आगे नहीं बढ़ा जाता था । ऐसे समय में सामरिक -शास्त्र दवारा इंगित रणनीति या व्यूह -रचना की आवश्यकताओं की भी उपेक्षा की जाती थी । इसी प्रकार प्रत्येक नवीन कार्य करने से पूर्व और किसी काम से बाहर जाने से पूर्व शक्न देखा जाता था । असाधारण शक्ति या वर प्राप्त कई एक व्यक्तियों को पश् -पक्षियों की बोली समझ सकने की क्षमता पर भी पूरा विश्वास किया जाता था ओर उनकी कही वात या सुझाव को सदैव मान्य कर तदनुसार आगे कार्यवाही की जाती थी । जीवन में अलौकिक घटनाओं पर पूरा विश्वास था, और यही कारण था कि अनेकानेक बातों में भी उनका उल्लेख मिलता है । जैसे मृत व्यक्ति का स्वयं मुँह फेर लेना या कही वात को सुनकर समझ लेना, साँप का प्रतिदिन एक मोहर लेना और साँप का मनुष्य की बोली बोलना आदि आदि ।

## 30.07 "राजस्थानी वातों के कुछ प्रमुख शीर्षक"

1.	पलाई रावल री वात	2.	क्ंभै जगमालोत री वात
3.	सातल सोप री वात	4.	भाटी वरसै तिलोकसी री वात
5.	उडणै प्रिथीराज री वात	6.	नारायण दास मीढाखान री वात
7.	मूलवै सागावत री वात	8.	हाडै सूरजमल नाराइणदासोत री वात
9.	अरजन हमीर भीमोत री वात	10.	द्दै जोधावत री वात
11.	चांपैवालै री वात	12.	सातल जोधावत री वात
13.	जैसे सरवहीयै री वात	14.	राजा भारनमल कछवाहै री वात
15.	राजा भीम री वात	16.	महाराव श्री अमरसिंह राठौड री वात
17.	राजा नरसिंह री वात	18.	पाबू जी राठौड री वात
19.	कूंमरै बलौच री वात	20.	जगदेव पंवार री वात

21.	मोरड़ी मतवाली री वात	22.	सोढे देवालदे री वात
23.	रेसामियै री वात	24.	देपाळ घंघ री वात
25.	तमाइची पातिसाह री वात	26.	मंडगसी कूंपावत री वात
27.	चौड रै बाबत फौफाणंद री वात	28.	अकल री वात
29.	रळे गढवै री वात	30.	राजा भोज खाफरै चोर री वात
31.	पदमै चारण री वात	32.	कुजबदी साहिजादै री वात
33.	जोगराज चारण री वात	34.	दम्पत्ति विनोद
35.	सयणी चारणी वात	36.	महिन्दर बीसलोत री वात
37.	जीजो डाभी री वात	38.	कछवाहां री वात
39.	रूपांदे री वात	40.	पीरोजसाह पातिसाह री वात
41.	जसमां ओडणी री वात	42.	बेताल पचीसी री वात
43.	ऊमादे भटियाणी री वात	44.	राजा करीणसिंघजी रै कंवरा री वात
45.	राणी चौबोली री वात	46.	बहलिमा री वात
47.	राजा भोज, माघ पिडत अर डोकरी री	48.	राव सुरताण देवड़े री वात
	वात		
49.	नाहरीहरणी घरमेके री वात	50.	बूंदी री वात
51.	सांखलै कंवरसी नै भरमल री वात	52.	मोहिलां री वात
53.	कांवलो जोईयो नैं तीडी खरल री वात	54.	लाखे फूलाणी री वात
55.	चच राठौड री वात	56.	गौगैजी री वात
57.	स्यामसुन्दर री वात	58.	भटनेर री वात
59.	हाहुल हमीर री वात	60.	वात राव केल्हण रो बेटा अर रागणदे रो
61.	छाहड पंवार री वात		बेटो मुलतान रा पादशाह मुसलमान कीयो
			तै री
62.	बीझरै अहीर री वात	63.	वीकेजी री बात
64.	बीजड़ जीजोगण री वात	65.	बीरबल री वात
66.	हंसराज बछराज री वात	67.	वीरमजी री वात

## 30.08 इकाई सारांश

राजस्थान में विपुल काव्य निधि के अतिरिक्त राजस्थानी गद्य साहित्य की भी प्राचीन एवं समृद्ध परम्परा रही है। राजस्थान गद्य साहित्य में 'बातों' का महत्वपूर्ण स्थान है। कीट-पतंग, पशु-पक्षी तथा पेड़ पौधों से लेकर महान ऐतिहासिक घटनाओं, इतिहास प्रसिद्ध पात्रों, प्रेम गाथाओं तथा पौराणिक आख्यानों तक को इस साहित्य में स्थान मिला है। ये बातें कई बहुत छोटी हैं जो कई इतनी बड़ी कि जिन्हें कई पृष्ठों में लिपिबद्ध किया जा सकता है। यह रुचिकर तथ्य है कि बहुत सी गाथाएँ लिपिबद्ध भी नहीं हो पायी है और आज भी लोगों की जबान पर है वात साहित्य इतना विपुल एवं विविधतापूर्ण

है कि उसका पूर्ण वैज्ञानिक वर्गीकरण करना कठिन है फिर भी इस इकाई में स्थूल रूप से वैसा करने का प्रयास किया गया है। बातों के प्रारम्भ या मध्य में दोहों का पुट है इन बातों में प्रकृति की अनुपम छटा, नगर की विशेषता, विशालता एवं सम्पन्नता, दुर्गा की अभेद्यता, युद्ध की भयंकरता, वीरों का रण कौशल, हाथी-घोड़ों के लक्षण, नायिका का सौन्दर्य, उसके शृंगारिक उपकरण, विरह की सुकोमल भावनाओं का उद्वेलन और मिलन की सुखद घड़ियों का वर्णन अलंकृत शैली में जमकर किया है। ये वर्णन इतने सजीव एवं मार्मिक है कि उन्हें पढ़कर या सुनकर कोई भुला नहीं सकता। इसके अतिरिक्त वात साहित्य के विवरण में देशकाल का वर्णन शासन प्रणाली, जागीर प्रणाली, जाति - व्यवस्था, आमोदप्रमोद नैतिक मूल्य, भाग्यवादिता, रुढि निर्वाह और जीवन सिद्धान्तों का वैविध्यपूर्ण उल्लेख हु आ है। भूत-प्रेत, शकुन - अपशकुन, देवी देवता, आकाशवाणी, जाद्द्रों ना आदि कितनी ही अलौकिक बातों का समावेश मिलता है। जहां तक कथा तत्व का सम्बन्ध है उसमें नाटकीयता लाने के लिये कथोपकथनों (गद्य एवं पद्य दोनों में) का प्रयोग हु आ है एवं साथ ही मुख्य कथा के अतिरिक्त सहायक कथाओं का भी समावेश हु आ है। राजा भोज एवं अकबर बीरबल कथाओं में इस प्रकार का तारतम्य मिलेगा। इन बातों की भाषा पुरानी राजस्थानी है और समय के साथ इसके स्वरूप मैं अनेक परिवर्तन आये हैं। यहां प्रयुक्त भाषा का सबसे बड़ा गृण उसकी सहजता और सजीवता है।

## 30.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

- (अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये।
  - (1) वात साहित्य से क्या अभिप्राय है।
  - (2) वात साहित्य किस भाषा में लिखा गया है।
  - (3) वात साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालिये ।
  - (4) 'वात में बात' का क्या अर्थ है।
- (ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये ।
  - (1) वात साहित्य की ऐतिहासिकता पर विचार लिखिये।
  - (2) वात साहित्य से तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर किस प्रकार प्रकाश पड़ता है।
  - (3) वात साहित्य में उल्लेखित चरित्र एवं चरित्र सम्बन्धी आदर्शों का विश्लेषण कीजिये ।
  - (4) वात साहित्य में वर्णित विश्वासों एवं परम्पराओं का मूल्यांकन कीजिये।

## इकाई 31 "लोक कथा एवं लोक काव्य"

#### इकाई की संरचना

- 31.01 उद्देश्य
- 31.02 प्रस्तावना
- 31.03 ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य
- 31.04 ऐतिहासिक मुक्तक काव्य
- 31.05 प्रबन्ध काव्य
- 31.06 मुक्तक काव्य
- 31.07 लोक गीत
- 31.08 जैन कवि एवं साहित्य
- 31.09 राजस्थानी गजल
- 31.10 इकाई सारांश
- 31.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

## 31.01 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पायेंगे कि

- (1) राजस्थान का लोक साहित्य कितना समृद्ध एवं प्राचीन है ।
- (2) राजस्थानी साहित्य में चारण, भाट व जैन लेखकों का किस प्रकार का योगदान है।
- (3) लोक काव्य कितना विविध है।
- (4) लोक साहित्य ऐतिहासिक परम्परा की विरासत है।

#### 31.02 प्रस्तावना

लोक कथा एवं लोक काट्य को चारण- भाट साहित्य के नाम से भी पुकारा जाता है। यहां चारण एवं भाट साहित्य से तात्पर्य चारण तथा भाट शैली में लिखित साहित्य से है। इस इकाई में हम मूलत: उन रचनाओं का विवरण देंगे जो मूलत: पद्य में हैं। इसे लोक साहित्य भी कहा जाता है क्योंकि जन -जन द्वारा इसकी रचनाएं हुई हैं यह तथ्य है कि ऐसे साहित्यकारों को समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त थी तथा संरक्षण भी था लेकिन आवश्यक नहीं कि उन्हें दरबारी संरक्षण एवं प्रोत्साहन ही सदैव था। किन्हीं किन्हीं परिस्थितियों में कभी भी प्राप्त हुआ हो। इस साहित्य का एक पक्ष यह भी है कि चारणों एवं राजपूतों का सम्बन्ध घनिष्ट और अन्योन्याश्रित रहा है। श्री हीरालाल महेश्वरी ने इस बिन्दु को यूं स्पष्ट किया है कि राजपूत शासकीय वर्ग में थे और चारण ने उस वर्ग के सदस्य के जन्मदिन, राज्याभिषेक, विवाह, युद्धभूमि आदि सभी गतिविधियों में गान गाया है। इस गान -साहित्य की प्रशंसा रविन्द्रनाथ ठाकुर, ग्रियसन, टैसीटोरी, आशुतोष मुखर्जी जैसे विद्वानों ने की है। चारण साहित्य को अलग से ले तो इसकी रचनाएँ मुख्यत: वीर, शृंगार एवं धर्म प्रधान हैं वैसे नीति, वैराग्य, ज्ञान रख व्यावहारिक धर्मों को भी अछुता नहीं छोड़ा गया है।

विद्वानों ने इस प्रकार के साहित्य को दो भागों में बांटा है, (1) ऐतिहासिक काव्य और (2) पौराणिक धार्मिक काव्य । श्री महेश्वरी ने इस विभाजन को 'प्रबन्ध ' एवं 'मुक्तक' के भेद से पुन: वर्गीकृत किया है । इससे पूर्व कि हम इस वर्गीकरण का विस्तार से अध्ययन करें यह जान लें कि प्रबन्ध एवं मुक्तक का यहां क्या आशय है । प्रबन्ध काव्य प्राय: गाहा, दोहा, पाघडी, मोतीदाम, कवित्र (छप्पय), झूलणा, नीसाणी, चौपाई, वेलिया आदि छन्दों में लिखे गये हैं । मुक्तक में भी रचनाएं गीत, दोहे नीसाणी, कवित्र (छप्पय), वेलीयो आदि के छन्दों के रूप में मिलती हैं । वास्तव में ये सभी रचनाएं डिगल साहित्य की महत्वपूर्ण धरोहर हैं । दोहा राजस्थानी का सबसे लोकप्रिय छन्द है और गीत साहित्य की विशिष्ट देन । दोनों ही श्रेणियों में इतिहास छिपा हु आ है और व्यक्ति तथा घटना विशेष की स्मृति इससे आज भी बनी हुई है । यहां गीत गाने की बात नहीं है बल्कि एक लय विशेष में ऊंचे स्वर से पाठ करने की बात है । अब आपका इन विशेषताओं से परिचय निम्न उदाहरणों में किये गये वर्गीकरण के अन्तर्गत सुझाते हैं जिससे विद्यार्थियों को यह जान होगा कि राजसीनी लोक साहित्य की रचनाएं कितनी समृद्ध एवं विविध हैं।

## 31.03 ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य

वीरमायण : - इससे रचियता 'बादर ' जाति के ढाढी थे । यह चारण शैली की पारम्परिक रचनाओं में है अत : इसे मध्यकाल के मध्य की रचना मान सकते हैं । इसमें पश्चिमी रेगिस्तानी क्षेत्र में हुई राजनैतिक घटनाओं का ताना - बाना एक तेज निरन्तर चल रही गति के साथ प्रस्तुत किया गया है । इसका प्रमुख नायक मारवाइ का राठौड़ वीर वीरम है और कथा मलानी के राव मल्लीनाथ, उसके पुत्र जगमाल तदुपरान्त राव वीरमजी और उनकी जोइयो के साथ शत्रुता एवं राव वीरमजी के अन्त का बदला लेने के लिये उसके पुत्र गोगादेव की गति विधियों से सम्बन्धित है । इस कथा से पूर्व मध्यकाल के राजस्थान के इतिहास पर जहां पर्याप्त प्रकाश पड़ता है वहीं काव्य सौन्दर्य एवं तत्कालीन शासकीय कबीलों की मनोवृत्तियों का अच्छा चित्रण मिलता है ।

अचलदास री वचनिका : - गाडज शाखा के चारण सिवदास की यह रचना राजस्थानी साहित्य में एक मील का पत्थर समझी जाती है । वस्तुतः यह गद्य एवं पद्य की एक मिश्रित रचना है और इसमें 120 छन्द हैं । छन्दों में दोहा, सोरठा, छप्पय और कुंडिलयों का प्रयोग हु आ है । पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण की इस रचना का केन्द्र स्थल हाडौती मालवा का दुर्ग गागरोण है ओर इसमें माइ के सुलतान व खीची शासक अचलदास के मध्य हु ए युद्ध एवं तदुपरान्त गागरोण में स्त्रियों द्वारा किये गये जौहर का सजीव विवरण है । जन साधारण में यह गाथा बहुत लोकप्रिय है और यह वीर तथा करुणारस के भाव जागृत कराती है ।

राव जैतसी रो पाघड़ी छन्द - 16वीं शताब्दी के अन्त में लिखी इस रचना के रचयिता बीटू स्जा है और इसका नायक बीकानेर का शासक राव जैतसी है जिसने मुगल समाट हुं मायू के भाई मिर्जा कामराव का सामना भटनेर एवं बीकानेर पर उसके आक्रमण के समय किया था एवं अपूर्व सफलता पायी थी । यह महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य रचना है और इतिहास के अनेक अधूरे पृष्ठों को भरती है । इस रचना में युद्ध एवं उसमें भाग लेने वालों की छोटी-छोटी बातों का पैना विवरण प्रस्तुत किया गया है एवं इसकी भाषा बहुत ओजपूर्ण है । एक ओर लेखक ने जिनका नाम अजात है इसी शीर्षक से रचना की है। मुख्य कथा सूत्र दोनों में समान है बिल्क एक दृष्टि से दोनों काव्य एक दूसरे के पूरक हैं। इसमें 485 छन्द हैं अर्थात् दूसरी रचना पहली से अधिक बड़ी है और कई दृष्टि से उपयोगी है इससे मिलती -जुलती एक अन्य रचना जैतसी रासौं है।

कान्हड़दे प्रबंधक : - ब्राहमण पद्यनाम की यह रचना 1512 ई. की है और इसमें अलाउद्दीन खिलजी जो कि दिल्ली का सुलतान था द्वारा जालौर पर किये गये आक्रमण का वृतान्त है । उस समय जालौर का शासक सोनगरा चौहान कान्हड़ दे था ।

यह प्रबन्ध चार खंडों में दो हजार पंक्तियों में रचित है। इसमें चौपाई एवं दोहों की प्रबलता है पर साथ ही एक दो स्थलों पर पद्य में भी उल्लेख है। इसे साहित्यकारों ने राजस्थानी महाकाव्य कहकर भी सम्मानित किया है। इतिहास की दृष्टि से भी यह एक अद्भुत रचना है। पूर्व मध्यकाल की घटनाओं का इतना लेखा -जोखा संभवत : किसी अन्य भारतीय स्रोत में न हो। साहित्यिक परम्परा में यह ग्रन्थ अपभ्रंश से निकलकर राजस्थानी में प्रवेश करता हुआ निर्णायक दौर प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त इसमें जन जीवन का पूरा दृश्य है। रीति रिवाजों, लोक मान्यताओं, रुढियों, परम्पराओं आदि का सुन्दर चित्रण हुआ है। इसकी शैली सरल हैऔर यह वर्णनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त मांउड व्यास की 'राय हमीरदेव चौपाई ' (321 छन्दों की रचना जो रणथम्भौर के राणा हमीर देव व द्र्ग पर हुए खिलजी आक्रमण से सम्बन्धित है); गाडण पसाइत की रचनाएं, राव रिणमल रो रूपक एवं गुण जोधायण; बारहट आसा की रावल माला री गुण, उमादे भटियाणी री कवित, राव चन्द्रसेण रा रूपक; सादूं माला की रचनाएं जो झूलणा के नाम से सम्बोधित है, जैसे, झूलणा महाराज राय सिंह जी रा, झूलणा दीवाण श्री प्रतापसिंह जी रा, झूलणा अकबर पात साहजी रा, आदि आदि । अकबर कालीन ये तीनों रचनाएं जहां एक ओर बीकानेर नरेश की वीरता का बखान करते हैं, वहीं दूसरी ओर अकबर की प्रसिद्ध गुजरात विजय का विवरण प्रस्तुत करते हैं । प्रतापसिंह जी रा झूलणा प्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध से सम्बन्धित है इस प्रकार लेखक साम्राज्यवादी शक्ति की महिमा, स्थानीय शक्तियों का उससे सहयोग एवं विरोध तीनों पक्षों को बहुत स्न्दरता से उभारा है। वीर मेहा ने प्रमुख रूप से धार्मिक एवं विशेष रूप से लोक नायकों एवं लोक देवियों पर अपनी काव्य रचनाएं प्रस्तुत की है । उसमें 'पाबूजी रा छन्द ', गोगाजी रा रसावला, करणीजीरा छन्द आदि मुख्य है । इसके अतिरिक्त खिडियों जगो दवारा रचित 'महाराज रतनसिंह री वचनिका (रतन रासो) एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य रचना है । इसमें औरंगजेब व महाराजा जसवन्दसिंह (जोधप्र) के मध्य धरमत में लड़े गये युद्ध का विवरण है जिसमें राव रतनसिंह ने मुख्य भूमिका निभायी थी । इसी प्रकार बीकानेर रै राव करण ने सूर सिंघजी तथा राव कल्याणमल री कविता हे । 19वीं शताब्दी में 'जस रत्नाकर ' बीकानेर के महाराजा रतनसिंह की प्रशंसा में रचित है। प्रसंगवश महाकवि सूर्यमल मिश्रण की महान रचना 'वंश भास्कर ' का उल्लेख करना आवश्यक है । बूंदी के इस कवि की रचना वीररस का समाज श्रेष्ठ उदाहरण है एवं राष्ट्रीय भावना से कूट कूट कर भरी हुई है । बीकानेर की एक अन्य रचना बीटू भोगे की महाराजा रतनसिंह जी री कविता है । अन्य ग्रन्थ 'स्जाण सिंह वरसल्लप्रगढ विजय ' है । 'महाराजा राजसिंह जी रो रूपक ' राठौड़ राजाओं की वंशावली है ।

## 31.04 ऐतिहासिक मुक्तक काव्य

राजस्थानी पद्य साहित्य में आकार में छोटी -बड़ी अनेक काव्य रचनाएं हैं जो किसी चिरत्र या घटना विशेष से सम्बन्धित है । चूंकि एक लेखक ने कई मुक्तक लिखे है इस कारण यहां विवरण लिखकों के नाम के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है । मुक्तक में भी किवत्र, वेलि दूहा, रूपक, फुटकर गीत, कुंडिलयाँ, आदि शीर्षकों के नाम से काव्य रचनाएँ हुई हैं । वेलि शीर्षक की रचनाओं ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की है । वेलि रचनाओं में पृथ्वीराज राठौड़ का नाम बहुत सम्मान के साथ लिया जाता है । यह बीकानेर के नरेश रायिसह जो अकबर कालीन थे, के छोटे भाई थे और इन्होंने न केवल योद्धा बिक्कि एक भक्त एवं किव के रूप में भी बहुत यश कमाया था । राजस्थानी के प्रसिद्ध किव दुरसा आढा ने इनकी रचना वेलि को पांचवां वेद एवं उन्नीसवां पुराण बतलाया है । पृथ्वीराज की निम्निलिखित चर्चाएँ विख्यात हैं : -

- (1) वेलि क्रिसन रुकमणी री
- (2) ठाकुरजी रा दूहा
- (3) गंगाजी रा दूहा
- (4) फ्टकर दूहे एवं अन्य गीत

विख्यात रचना 'वेलि क्रिसन रूकमणी री ' 304 छन्दों की रचना है एवं डिंगल भाषा की प्रतिनिधि रचना है । काव्य सौष्ठव से सुसज्जित इस कृति का मूल कथानक भावगत से लिया गया है और इसके नायक -नायिका क्रमश : कृष्ण एवं रुक्मिणी हैं । वर्णन प्रधान इस कथा में श्रृंगार, वीर एवं भिक्त रस प्रचुरता में हैं ।

17 वीं शताब्दी परगना मेइता के बलूंदा गांव में जन्मे माधोदास जी वधवाडिया पृथ्वीराज राठौड़ के समकालीन थे। इनकी रचित 'रामरासाँ ' साहित्यिक एवं राजस्थानी का अद्भुत मिश्रण है और इनमें कुल मिलाकर पौने ग्यारह साँ छन्द हैं। जैसािक शीर्षक से ही प्रमािणत है, यह रामकथा है और वीररस का उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य है इसका आधार वाल्मीिक रामायण है। धार्मिक श्रेणी के अन्य काव्य ग्रन्थों में गजमोख, नागदमण, रुखमिण हरण, हीरचन्द पुराण, सप्तसती रा छन्द आदि है। भक्तों में जैसा हीररस का प्रचार हुआ, वैसा किसी अन्य रचना का नहीं।

मुक्तक काव्य के अन्य प्रसिद्ध लेखक है, सिढायच, चौभुजा, बारहट चौहथ, खिडियो चानण, हीरसूर, बीड् सूरा, लालजी महडू आदि है। गोरा द्वारा रचित, राव लूण करण रा कवित, राव जैतसी रा कवित उल्लेखनीय है। ये दोनों ही बीकानेर के शासक थे। बारहट आसा द्वारा लिखित, जोधपुर के नरेश, 'राव चन्द्रसेन ' (चन्द्रसेण रा रूपक), रूठी रानी उमादे पर 'उमादे रा कवित ', बाघरी रा दूहा बहु चर्चित हैं। डिंगल के शिरोमणी बारहट ईसरदास की अनेक रचनाएं हैं जिसमें 'हाला भाला रा कुंडलिया ' हलवद नरेश, झाला रायसिंह और धोल राज्य के ठाकुर हाला जसाजी के मध्य हुए युद्ध की स्मृति स्वरूप रचना है। यह वीररस से ओतप्रोत रचना है। सिरोही के राव सुरताण के संरक्षण में रहे कवि दूदा आसिया का नाम भी कम नहीं है। बीकानेर के प्रसिद्ध नरेश रायसिंह ने चारण कवि बारहट शंकर को कहा जाता है सवा करोड़ का दान दिया था। इसी काल के अन्य कवि थे, सिदायच गैपो, दल्ला

आसीया एवं रतन् देवराज । बारूजी सौदा, जमणाजी बारहट, हरीदास केसरीया, गोरधन जी बोगसा, सूरायच टापीरया ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने वीररसको आदर्शों की ऊंचाईयों में ढाल दिया है ।

दुरसा आढा का स्थान चोटी के किवयों में हैं । इनका सम्राट अकबर से अच्छा सम्पर्क था । लेकिन शनै:शनै उनका मन उचाट हो गया और उन्होंने राणा प्रताप की वीरता एवं त्याग के सम्बंध में प्रसिद्ध छन्दों एवं दूहों की रचना की । उनकी प्रमुख रचनाओं में, 'विरुद्ध छिहत्तरों, किरतार बावनो, राउ श्री सुरताण रा किवत्र, झूलणा रावत मेघा रा, झूलणा राव श्री अमरिसंह जी गजिसंघोत रा, आदि हैं । इसी श्रेणी व भावना के अन्य किव थे, सांदू माला । इस काल में अनेक स्त्री किवयाँ भी हुई । जिनमें झीमा चारणी, पदमा सांदू (सांदू माला की बहिन), जैसलमेर के रावल हरराज की बेटी और राठौड़ पृथ्वीराज की पत्नी चम्पादे, मुख्य है ।

#### 31.05 प्रबन्ध काव्य

अपभ्रंश की विशाल एवं सशक्त साहित्यिक परम्पराएं राजस्थानी को मिली हैं और अनेक लौकिक प्रेम गाथाओं ने स्थानीय साहित्य में स्थान ग्रहण किया है। चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रचित 'वीसलदेव रास ' के समय ही श्रृंगार रस का काव्य ' श्रृंगार शत ' लिखा गया था। इस परम्परा को 'लोक काव्य ' की श्रेणी में भी रखा गया है जिसे महेश्वरी जी ने राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ 197) स्थूल रूप से, (1) लोक काव्य (2) फागु काव्य एवं (3) लोकगीत में विभक्त किया है। यह लोक काव्य भी ऐतिहासिक काव्य की भांति प्रबन्धक एवं मुक्तक में बांटा जा सकता है। प्रबन्ध काव्य

लोक साहित्य के प्रबन्ध काट्य में लेखक दामो कृत लखमसेन पदमावती चौपई जो कि एक प्रेम कथा है की काफी चर्चा है लेकिन राजस्थान की प्रेम -लोक -कथाओं में 'ढोला -मारू रा दोहा ' शीर्षस्थ रचना है । संभवतः प्रारम्भ में कल्लोत नामक लेखक ने इसकी रचना की थी जिसे बाद में कई अन्यों ने भी इसमें अपनी ओर से वृद्धि कर दी । संभवत : इसका रचनाकाल 16वीं शताब्दी का प्रारम्भ काल है और इसके छन्दों की संख्या कुशललाभ नामक लेखक ने 700 के लगभग बतायी है । पूगल के राजा पिंगल की पुत्री मारवणी (मारू) एवं नखर ने राजा नल के पुत्र ढोला की यह प्रेम गाथा एक जातीय काट्य है । जिसमें प्रेम, श्रृंगार, विरह एवं मिलन की मनोदशाओं का हृदयगायी चित्रण किया है और इसका मनोविज्ञान किसी भी नायक एवं नायिका का हो सकता है । इसमें नायिका मारवणी एवं प्रवासी पक्षी कुरजा के मध्य का वार्तालाप तो बहुत ही मार्मिक है । जिस प्रकार कालीदास के मेध्दूत में 'बादल ' एक सशक्त माध्यम का पात्र है यहां भी मारवणी बादल से कहती है,

'बीजलिया नीलज्जियां, जलहर तूं ही लज्ज । सूनी सेज विदेश प्रिय, मधुरई मधुरई गज्ज ॥

इसी क्रम में मध्यमवर्गीय जीवन की प्रेम कहानी पर श्रृंगार रस से ओतप्रोत कामदेव की स्तुति करते हुए गणपित की 'माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध ' रचना है । इसमें जन -जीवन की अनेक मान्यताओं की झलक मिलती है । इसमें विशेष आकर्षण के बिन्द् बारहमासा का वर्णन है ।

गुजराती एवं राजस्थानी की एक प्रमुख काव्य गाथा, 'नरसीजी रो माहेसे ' है । जो सुप्रसिद्ध भक्त एवं किव नरसीजी मेहता की पुत्री नानी बाई की गाथा है । रचियता रतनाखाती है । माहेसे का तात्पर्य भात भरने से है अर्थात् लड़की के पिता अपनी दोहिती की शादी पर भेंट स्वरूप अर्पित करने

की प्रथा है। नरसी जी सीधे साधु भक्त थे और ईश्वर कृपा से ही वे इस रस्म को पूरा करने में समर्थ हुए। इस कथा से पारिवारिक जीवन की अनेक परम्पराओं का मार्मिक चित्रण प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त लोककाव्यों में पाबूजी के पावड़े, निहाल दे सुलतान के पावड़े, बिल्हण चरित चौपाई, सगालया शेष चौपाई आदि प्रसिद्ध हैं। 'छिताई चरित्र' एक ऐतिहासिक प्रेम गाथा है। 17 वीं शताब्दी के इस महत्वपूर्ण काव्य में अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ आक्रमण एवं पद्मिनी को हस्तगत करने की महत्वपूर्ण कथा है। लोककाव्यों में बगावतों की कथा अत्यन्त लोकप्रिय एवं रोचक है। रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत ने लिखा है कि बगावतों के पूरे परिवार को कत्ल कर दिया गया था। पर उनके कृत्यों की जईं जो जनमानस में गहरी पैठ कर चुकी हैं उन्हें विध्वंस करने की शक्ति किसी में नहीं है।

## 31.06 मुक्तक काव्य

मुक्तक काव्य में दोहे एवं सोरठों की भरमार है । अधिकांशतः ये मौखिक परम्परा में हैं अतः इनका कालक्रम निर्धारित करना कठिन है । साथ ही इनमें विषय के रूप में लौकिक प्रेम कहानियों की भरमार है । राजस्थानी मुक्तक यूनानी दुखान्त अन्त के समीप भी है । मिलन के स्थान पर विरह अनेक बार प्रधानता प्राप्त कर लेता है । इसके अतिरिक्त समाज की व्यवस्था एवं परम्पराओं तथा नीति- अनीति पर भी टिप्पणियाँ हैं । लौकिक प्रेम कहानियों में, 'जेठवा-ऊजली ', नागजी- नागमती, शेणी वीजाणंद, 'बीझा - सोरठ ' के सोरठे बहुत प्रचलित है ।

फागु काव्य का तात्पर्य अधिकांशतः जैन किवयों द्वारा रची गयी रचनाएँ हैं। जैनेतर किवयों ने भी प्रयास किया है और उनकी रचनाएँ कृष्णचरित से सम्बन्धित है। 16 वीं शताब्दी में केशवदास ने 'बसन्त विलास फागू' की रचना की थी। फिर चतुर्भुज कृत 'भ्रमर गीत फागु' एवं सोनीराम कृत 'बसन्त विलास फागु' है। तीनों रचनाओं में कृष्ण की लीलाएं तथा गोपियों एवं रुक्मिणी के साथ प्रसंगों के विभिन्न पक्षों का विवरण हैं।

## 31.07 लोकगीत

भारत के अन्य भागों की भांति यहां इस क्षेत्र में लोक गीतों की भरमार है। ये मूलतः मौखिक तो हैं ही और विभिन्न संस्कार समारोहों एवं उत्सवों पवीं के समय तो अपना चिरत्र स्पष्ट करते ही हैं परन्तु सौभाग्य इन्हें अनेक समकालीन पोथियों में भी स्थान मिला है। जैन कवियों ने इन लोकगीतों की तर्ज पर अपने गीत तैयार किये हैं जिससे इनकी लोकप्रियता का भान होता है। महेश्वरीजी ने इन गीतों को कई श्रेणियों में विभक्त किया है जिनके आधार पर हम अपना विवरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत करते हैं: -

ऐतिहासिक गीत: - इसमें बंगाल के शासक गोपीचन्द के अपनी रानियों के साथ किया संवाद जो 'गोपीचन्द गीत' के नाम से चर्चित है, सिम्मिलित है 'फतमल का गीत' में हाडौती के राव फतमल तथा उसकी टोडा की रहने वाली प्रेमिका की भावनाओं से सम्बन्धित है । 'सुपियारदे का गीत' एक त्रिकोणीय प्रेम गाथा का स्वरूप है ' और 'घूमर' के गीत तो राजस्थान में स्थल-स्थल पर गाये जाते हैं । 'घूमर' के गीत के अनेक प्रसंग है पर जोधपुर-बीकानेर की संयुक्त सैना का दौलतखां पर विजय की प्रशंसा में इसका संदर्भ सर्वाधिक आया है । 'ऊमादे का गीत' ' रूठी रानी का गीत है । 'लाखा फूलाणी के गीत' मध्यकाल के प्रारम्भ से है और इनकी उत्पति सिन्ध प्रदेश में हुई थी । टैसीटोरी ने राजस्थानी

गीतों की एक लम्बी सूची दी है जिसमें मध्ययुगीन राजपूत राजाओं में लगभग सभी का विवरण आ गया है ।

सामाजिक गीत - इसके अन्तर्गत चर्चा में आये गीतों में ' आम्बो मोरियो ' 'गवालियों का स्वर्ग ' आदि गीत है जो जनसाधारण की परम्पराओं एवं अभिव्यक्तियों को दर्शाते हैं ।

ऋतुपरक गीत - इन गीतों की राजस्थानी में भरमार है, विशेषकर प्रेम भावनाओं के अन्तर्गत । सावन- भादों माह के गीतों का तो विशेष महत्व है ही परन्तु साथ ही ग्रीष्म एवं शीतमास के भी गीत हैं ।

भावना गीत: - वस्तुत: ये गीत प्रेम भावनाओं को ही केन्द्र बिन्दु बनाकर गाये गये हैं । इसमें भावन, सोमभावना एवं लाल्य गीत सम्मिलित हैं । राजस्थान की विषम जलवायु एल रोजगार को निकले व्यक्तियों की पत्नियों की प्रतीक्षा पीड़ा को इसमें विशेषत: दर्शाया गया है ।

## 31.08 जैन कवि एवं साहित्य

उत्तरकालीन अपभ्रंश एवं राजस्थानी साहित्य को समृद्ध बनाने में जैन लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान है। उन सभी का इस छोटी सी इकाई में विवरण देना कठिन है लेकिन संक्षिप्त रूप से उनके योगदान को मूल्यवान समझते हुए सीमित प्रयास किया गयाहै। श्री महेश्वरी ने मध्यय्गीन जेन लेखकों की सूची दी है। महोपाध्याय जयसागर (जिन कुशल सूरि सप्तितका), देपाल (जम्बूस्वामी पंच भव वर्णन चौपई), ऋषिवर्द्धन सूरी (नल दवदंती रास), मतिशेखर (धन्नारास), पद्मनाम (इंगर बावनी), धर्म समुद्र गणि (रात्रि भोजन रास) सहज सुन्दर (ग्ण रत्नाकर छन्द), पार्श्वचन्द सूरि (श्री केशी प्रवेशी प्रबन्ध) छीहल (पंच सहेली), विनय सम्द्र (थंमणा पार्श्वनाथ स्तवन), राजशील (विक्रम खापर चरित चौपाई), पुण्यसागर (सुबाहू- सन्धि), कुशललाभ (ढोला मरवरणी चौपई), मालदेव (प्रन्दर चौपाई), हीरकलश (मोती कपासिया संवाद), कनकसोम (आषाढभूत चौपाई), हेमरतन सूरि (गोरा बादल री चौपई), इतिहास जगत में इस रचना की बहुत चर्चा है और यह उन दो वीरों गोरा -बादल की गाथा है जिन्होंने रानी पद्मनी के साथ मिलकर चित्तौड़ पर खिलजी आक्रमण का सामना किया था) उपाध्याय गुणविनय (जीव प्रतिरोध), समय स्न्दर, विजय सूरि, जयसोम, कल्याणदेव, सारंग, साध्कीर्ति, धर्मरत्न एवं विजय शेखर, आदि अनेक गीत रचनाकार थे। यहां जिन विदवानों की रचनाओं का उल्लेख किया गया है उसके अतिरिक्त इकाई लगभग सभी ने ढेर सारी रचनाएँ या गीत लिखे हैं। इनकी रचनाएँ शान्त, सरल, स्तुतिपरक एवं आत्मोत्थान की है। विदेशी विदवान कर्नल टॉड एवं टैसीटोरी ने इन्हीं जैन लेखकों की रचनाओं पर अपनी राजस्थानी साहित्य एवं इतिहास की समझ बढायी है।

अब हम आप के सामने इनकी कुछ रचनाओं का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत करते हैं। राजस्थानी की प्राचीन रचनाओं में वज्रसेन सूरि कृत 'भरतेश्वर बाहु बिलघाट एवं शालिभद्र सूरि की स्वावना के फल के रूप अनेक रचनाएँ लिखी गयी हैं। ये रचनाएँ चरित काव्य एवं कथा काव्यों के रूप में उपलब्ध हैं। चरित काव्य दो प्रकार में हैं। ऐतिहासिक एवं पौराणिक। दोनों श्रेणियों के अनेक रूप हैं जो मुख्यतः निम्न प्रकार से हैं: -

(अ) रासो, रास: - इसके नाम रासौ, रास, राइसो, राइसौ, रासउ, रायसौ, रासक आदि हैं । रासो का मूल स्वरूप कृष्ण-रास में मिलता है और प्रारम्भ में यह श्रृंगारिक गीत-नृत्य काव्य था तत्पश्चात इसके रूपकों एवं कार्ट्यों की रचना हुई । गीत का काट्य ग्रन्थ में परिवर्तित होना एक साहित्यिक गति है । प्रसिद्ध 'पृथ्वीराज रासो' इस श्रेणी का एक श्रेष्ठ उदाहरण है ।

- (आ) चौपाई गीत छन्द में लिखे जाने के कारण इस नाम से जाना गया । कालान्तर में रास एवं चौपाई एक दूसरे के पर्याय बन गये ।
- (इ) सन्धि : महाकाट्यों में सर्ग के अर्थ में सन्धि शब्द का प्रयोग होने लगा ।
- (ई) चर्चरी : किसी पर्व एवं उत्सव के अवसर पर ताल एवं नृत्य के साथ गायी जाने वाली रचना को चर्चरी कहते हैं ।
- (3) ढाल: पूर्व प्रचलित किसी काव्य या गीत की तर्ज पर अन्य रचना को ढालने को ढाल करते हैं ।
- (ए) प्रबन्ध, आरव्यान, कथा: ये किसी चरित्र या घटना विशेष के विवरण से सम्बन्धित होते हैं । जैसे 'कान्हदड़े प्रबन्ध' कान्हड़दे से सम्बन्धित है ।
- (ऐ) पवाड़ा या पवाड़ो यह किसी की कीर्तिगाथा के लिये प्रयुक्त होता है । 'पाब्ज़ी के पवाड़े' इसी संदर्भ में लोककाव्य के रूप में गाये जाते हैं । इस वर्गीकरण के अतिरिक्त रचनाओं के जो शीर्षक हैं एवं चर्चा में हैं, इस प्रकार हैं
- (अ) बारहमासा: इसमें सरल शब्दों में वर्ष के 12 महीनों का विशिष्ट वर्णन रहता है और प्रकृति एवं कतर रस की प्रधानता रहती है । इस लोक काव्य में नायिका का विरह विवरण छाया रहता है ।
- (आ)वेलि या वेलियाँ: जैन लेखकों की बेलियाँ छोटी-छोटी है और विवाह आदि के संदर्भ में हैं। विवाह के गीतों को मंगल या धवल कहा जाता है। विवास्थलों का उल्लेख भी आया है।
- (इ) फागु यह फाल्गुन चैत्र मास की बसन्त ऋतु में गाया जाने वाला काव्य एवं गीत है इसे मधु महोत्सव के रूप में भी कहा जाता है । धमाल भी इसी प्रसंग में हैं ।
- (\$) बावनी: वर्णमाला के 52 अक्षरों के क्रमशः प्रासंगिक पदों की रचना को बावनी कहा जाता है ।
- (3) कुलक: किसी का संक्षिप्त परिचय अथवा शास्त्रीय विशेष बात को कहने का अर्थ है।
- (ऊ) हीयाली: पहेली को कहते हैं।
- (ए) स्तुतिः स्तवन के अर्थ में है।

चिरत्र विशेषक लोक कथाओं का भी प्रचलन खूब रहा हैं। राजा विक्रमादित्य एवं राजा भोज के कथानक इस श्रेणी में आते हैं। उसी प्रकार पचीसी एवं बतीसी तथा चौपाई की रचनाएँ हैं। इनका विवरण हम इस इकाई में ही कई प्रसंगों दे चुके हैं। इसके अतिरिक्त सन्त शैली के गेयपदों, पद्य एवं गद्य दोनों में पट्टाविलयाँ, टीका ग्रन्थ तथा साथ ही ज्योतिष, शकुन, रीति कार्य पर भी रचनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है।

## 31.09 राजस्थानी गजल

गजल की राजस्थानी भाषा का एक प्रमुख काव्य रूप रहा है। इसमें मुख्य रूप से एक नगर विशेष का विवरण मिलता है। इस कारण प्रत्येक गजल का नाम भी नगर विशेष पर रखा हुआ है जैसे, जोधपुर की गजल। ये गजलें (राज्य उर्दू की गजलों के अनुरूप नहीं हैं। बल्कि इनकी अपनी निज शैली है एवं शिल्प विधान । इन रचनाओं में नगरीय स्वरूप की सम्पूर्ण झांकी हमें मिलती हैं और प्रत्येक नगर की अपनी निज विशेषता का भी भान होता है । समाज की इन विशेषताओं एवं वर्गों का तो वर्णन है ही परंतु 'नारी' पर विशेष रूप से लिखा गया है । गजल-संज्ञक रचनाओं में जैनयतियों की कलम का विशेष योगदान है । ऐसा प्रतीत होता है कि जैन मुनि चर्तुमास करते समय जिस नगर में रहते थे, उसी का विवरण काव्यरूप से तैयार करवा लेते थे । यह लोक भाषा में है लेकिन इसमें उर्दू फारसी शब्दों की भी भरमार है । प्रमुख गजलों में, आगरा की गजल, उदयपुर की गजल, गिरनार की गजल, गोरमजी की गजल, चित्तौड़ की गजल, नागौर की गजल, बंगालदेश की गजल, बीकानेर की गजल, मारोट की गजल, लाहौर की गजल आदि आदि । लाहोर की गजल का एक उदाहरण हैं ।

'मूलां कातिब, करे कुराण, पण्डित पढै वेद पुराण । बहुत तबीब तिहां रहितेकि, वेदन जीव की लहितेकि ।।

## 31.10 इकाई सारांश

इस प्रकार हमने देखा कि राजस्थान का पद्य साहित्य कितना प्राचीन है एवं मध्ययुग में नये-नये आकारों में पल्लवित हुआ । प्रबन्ध काव्य से दूहों तक इसकी विस्तार सीमाएं बनी । साथ ही ऐतिहासिक, धार्मिक पृष्ठभूमि से सुसज्जित होकर जन मान्यताओं तक विकसित हुई । भारत के बहुत कम क्षेत्रों में लोक साहित्य इतना संरक्षित एवं विस्तृत हुआ । चारण भाट एवं जैन समाज के लेखकों ने जहां इसे सींचा तो वहीं राजपरिवार के सदस्य भी समय-समय पर अपनी कलम चलाने में नहीं चूके । टैसीटोरी ने इस साहित्य को उजागर करने में अथक प्रयास किया । श्री वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन सही है कि मानव के सुख, दुख, प्रीति, श्रृंगार, वीरभाव और बैर इन सब ने खाद बनकर लोक कथाओं को पुष्ट किया है। रहन-सहन, रीति रिवाज, धार्मिक विश्वास, उपासना, पूजा इन सबसे कहानी का ठाठ-बाठ बनता और बदलता रहता है। महाभारत के रचियता वेदव्यासजी ने लिखा है ।

"गुहम्ब्रहम्हमिद ब्रबीमि, निह मानुषाछुष्ठतरमिह किंचित"

(अर्थात् रहस्य ज्ञान की एक कुंजी तुम्हें बताता हूँ कि इस लोक में मनुष्य से बढ़कर और कुछ नहीं है ।)

## 31.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

## (अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये ।

- (1) दूहों से क्या तात्पर्य है?
- (2) वेलि पर एक टिप्पणी लिखिये।
- (3) फाग गीत क्या हे?
- (4) टैसीटोरी के शोध कार्य का महत्व बतलाइये।

## (ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये ।

- (1) ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य पर प्रकाश डालिये ।
- (2) 16 वीं शताब्दी में जैन लेखकों का राजस्थानी साहित्य में योगदान स्पष्ट कीजिये।
- (3) लोक गीतों पर टिप्पणी लिखिये।
- (4) मुक्तक काव्य पर प्रकाश डालिये ।

# इकाई सं. 32 "राजस्थान का ख्यात साहित्य"

### इकाई संरचना

- 32.01 उद्देश्य
- 32.02 प्रस्तावना
- 32.03 ख्यात साहित्य का आरम्भ
- 32.04 प्रमुख ख्यात रचनाएँ
  - 32.04.1 नैणसी री ख्यात
  - 32.04.2 उदयमाण चांपावत री ख्यात
  - 32.04.3 जोधपुर राज्य की ख्यात
  - 32.04.4 दयालदास री ख्यात
  - 32.04.5 बांकीदास री ख्यात
  - 32.04.6 जैसलमेर री ख्यात
  - 32.04.7 गोगूंदा की ख्यात
- 32.05 इकाई सारांश
- 32.06 अभ्यासार्थ प्रश्न

## 32.01 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप राजस्थान के इतिहास लेखन की विशेष परम्परा का परिचय पायेंगे तथा निम्न जानकारियाँ प्राप्त करेंगे : -

- (1) राजस्थान में इतिहास लेखन (ख्यात) की परम्परा कब से है।
- (2) ख्यात साहित्य के विषय कौन-कौन से हैं।
- (3) प्रमुख ख्यात रचनाएँ कौन-कौन सी हैं।
- (4) इन रचनाओं का सांस्कृतिक व राजनैतिक महत्त्व क्या है।

## 32.02 प्रस्तावना

भारतीय वाङ्गमय में यहाँ ख्यात साहित्य की सुदीर्घकालीन परंपरा के कारण जहां विशेष महत्व रहा है वहीं राजस्थान की ऐतिहासिक परंपरा को मूर्तरूप देने में ख्यात सहायक सिद्ध हुई हैं। ख्यात का तात्पर्य ख्याति से है अर्थात ख्याति प्राप्त किसी राजवंश अथवा स्थान विशेष अथवा व्यक्ति विशेष की मुख्य उपलब्धियों को उजागर करना ख्यात का उद्देश्य रहा है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि इसमें किसी व्यक्ति, घटना या काल विशेष का विवरण होता है।

राजस्थानी साहित्य की दो मुख्य धाराएं हैं- गद्य व पद्य । ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर एक ओर जहां रासौ, झमाल, झूलणस, सिलोका, वचिनका, दोहे, विलास, प्रकाश आदि पद्य रचनाओं का सृजन हु आ, वहीं दूसरी ओर बात, विगत, वंशावली, हाल, हकीकत और ख्यात आदि गद्य रचनाओं का प्रणयन हु आ । यों देखा जाय तो ख्यात -साहित्य बात, विगत, वंशावली का ही विकसित स्वरूप

है । 15 वीं व 16 वीं शताब्दी में मुख्यतः बात और वंशाविलयों को कलमबद्ध करने की परंपरा रही, फिर धीरे- धीरे इन रचनाओं ने 17 वीं शताब्दी की यात्रा करते हुए ख्यात का स्वरूप ले लिया । मुहता नैणसी की ख्यात इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है । 17 वीं शताब्दी के मध्य तक राजस्थान में कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं लिखा गया । बिखरी हुई बाते, फुटकर कवित्व प्रबंध काव्य आदि सामग्री अवश्य अतीत की घटनाओं की पहचान कराने में अपनी भूमिका निभा रही थी । ख्यात साहित्य के सृजन के साथ ही क्रमबद्ध इतिहास लेखन की वेगवती धारा का प्रादुर्भाव हु आ और फिर आगे चलकर कई शोधपूर्ण इतिहास रचे गये ।

यह विडम्बना ही है कि प्रारंभ में ख्यात साहित्य का सृजन समूचे राजस्थान में नहीं हु आ और इसका क्षेत्र मारवाइ- बीकानेर में सिमट कर रह गया । इसका परिणाम यह हु आ कि इतिहास विषयक पुराने साहित्य का संकलन विवेचन ख्यात साहित्य के माध्यम से मारवाइ व बीकानेर में तो हो गया परन्तु मेवाइ, हाडौती (कोटा -बूंदी) शेखावाटी (जयपुर) और जैसलमेर आदि क्षेत्रों में ख्यात साहित्य का प्रचलन नहीं होने के कारण यहां की उपलब्ध सामग्री का उपयोग यथा समय नहीं हो सका और यहां की पुरानी सामग्री नष्ट हो गई । परिणामत : राष्ट्र की बहु मूल्य थाती से हमें हाथ धोना पड़ा ।

## 32.03 ख्यात साहित्य का आरंभ

ख्यात साहित्य का प्रादुर्भाव 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हु आ । उस समय लगभग 200 वर्ष प्राचीन सामग्री के आधार पर ख्यात लेखन का कार्य सम्पादित किया गया । परन्तु इससे प्राचीन सामग्री उपलब्ध नहीं होने के कारण प्राचीन वंशाविलयाँ तैयार करने के लिए पौराणिक ग्रंथों और रावो, भाटों की बहियों का सहारा लेना पड़ा जिससे प्राचीन इतिहास के लेखन में कई त्रुटियाँ रह गई । प्रारंभ में ख्यातकारों (नैणसी) ने जैसी सामग्री मिली उसे अपनी ख्यात में समाहित कर लिया उस पर कोई टीका टिप्पणी या विश्लेषण करने का प्रयास नहीं किया । इसिलए कई अतिश्योक्तिपूर्ण बातों का संकलन ख्यात में हो गया परंतु आगे चलकर ख्यात लेखन की परपरा में सुधार होने के कारण यह साहित्य अपने मापदंडों को मूर्तरूप देता हु आ दिखाई देता है ।

जहां तक ख्यात साहित्य के विषय-वस्तु का प्रश्न है इस संदर्भ में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि केवल राजवंशों और राजपूतों की शाखाओं के बारे में ही ख्यातें नहीं रची गई; बल्कि चारण, सन्यास कायस्थ, पुरोहित आदि विविध जातियों के अलावा कई ठिकानों, घरानों और नगरों की ख्यातें भी लिखी गई। प्राय: ऐसा समझा जाता है कि ख्यातों में केवल राजनीतिक घटनाओं का विवरण मिलता है परंतु ख्यात ग्रंथों का ध्यान से अध्ययन किया जाय तो भौगोलिक स्थिति, शासन प्रबंध, सामन्तों की भूमिका, जागीर प्रणाली, भवन निर्माण, जनकल्याण कार्य, खेती-बाइी, आय के स्रोत आदि कितने ही पहलुओं के बारे में जानकारी मिलती हैं।

राजवंशों से संबंधित अधिकांश ख्यातें राज्याश्रय में लिखी गई, परंतु ऐसा लगता है कि लेखक अपने विचार प्रकट करने में स्वतंत्र थे । उन पर कोई विशेष अंकुश नहीं था । जोधपुर राज्य की ख्यात में मुगलों के साथ हु ए वैवाहिक सम्बंधों, षड्यंत्रों, जघन्य हत्याओं के प्रकरण पर ख्यातकारों ने खुलकर कलम चलाई है । इसके अतिरिक्त फारसी ग्रंथों में जिस प्रकार मुगल -सम्राटों का पक्षपातपूर्ण वर्णन हु आ है ऐसे एक तरफा वर्णन से ख्यातें मुक्त हैं । उदाहरण के लिए ख्यात कारों ने हल्दीघाटी के युद्ध

में महाराणा प्रताप की हार व अकबर की जीत, सुमेल गिररी के युद्ध में राव मालदेव की हार और घरमत के मुद्ध में औरंगजेब की विजय व जसवंतसिंह के परास्त होने का स्पष्ट उल्लेख किया है।

पुरालेखीय सामग्री और शिलालेख समसामयिक होने के कारण ख्यात ग्रंथों से अधिक प्रमाणिक माने गये हैं परंतु पुरालेखों में केवल पट्टेदारों (पट्टायतों) की सूचियाँ, राजकीय हिसाब-किताब, समाचार और शासन प्रबंध संबंधी जानकारी मिलती है और शिलालेखों में निर्माण कार्य व ऐतिहासिक पुरुषों के मृत्यु संवत उपलब्ध होते हैं । इसलिए इस सामग्री की विस्तृत विवेचना के लिए ख्यात साहित्य का ही सहारा लेना पड़ता है । उदाहरण के लिए अमुक शिलालेख किस व्यक्ति का है और उसकी मृत्यु कब हुई यह सूचना शिलालेखों से प्राप्त होती है परंतु उस व्यक्ति का वंशक्रम और उसके जीवन की उपलब्धियाँ आदि का विवरण ख्यातों में ही मिलता है ।

# 32.04 प्रमुख ख्यात रचनाएँ

17 वीं व 19 वीं शताब्दी के बीच अनेक महत्वपूर्ण ख्यात ग्रंथों का प्रणयन हुआ, इनमें से कितपय मुख्य ख्यातों का विवेचन प्रस्तृत है -

## 32.04.1 मुहता नैणसी री ख्यात

अब तक प्रकाश में आयी ख्यातों में यह ख्यात सबसे प्राचीन मानी गई है । जोधपुर के महाराज जसवंतिसंह के सुप्रसिद्ध दीवान नैणसी द्वारा बातें, पंशाविलयें, हकीकत आदि इतिहास विषयक सामग्री इसमें समाहित की गई है । इस प्रकार इसमें मारवाइ ही नहीं समूचे राजस्थान तथा उसकी सीमा से लगे हुए गुजरात व मालवा के राजवंशों का वर्णन मिलता है । जो राजनीतिक व सामाजिक इतिहास की दृष्टि से उपयोगी है । नैणसी द्वारा किया गया यह संकलन नैणसी की ख्यात के नाम से सुविख्यात है । यहाँ नैणसी द्वारा रचे गये ' 'मारवाइ रा परगना री विगत " का उल्लेख किया जाना भी आवश्यक है । जिसमें मारवाइ के सात परगनों (जोधपुर, सोजत, मेइता पोकरण, फलोदी, सिवाणा) का क्रमवार इतिहास और फिर उन परगनों के अंतर्गत पड़ने वाले गांवों की रेख ' और भूमि एवं खेती बाड़ी का विवरण दिया है जो विशेषत: आर्थिक इतिहास के अध्ययन हेतु उपयोगी है । इतिहासकारों ने नैणसी को राजस्थान का अबुलफजल कहा है । इसका सम्पादन श्री बद्रीप्रसाद साकरिया ने किया है जिसे राजस्थान प्राच्य विदया प्रतिष्ठान जोधपुर ने चार भागों में प्रकाशित किया है।

ख्यात में राजनीतिक इतिहास के साथ ही प्रत्येक राज्य की भौगोलिक स्थितियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दी है। जैसे मेवाइ के वर्णन में यहां के नदी नालों, पहाड़ों, घाटियों, जल -स्रोतों, खिनज -सम्पदा, आदिवासी और खेतीहर जातियों, फसलों, वृक्ष, पौधों, प्रमुख नगरों, मंदिरों, कोट, महल, बाग बगीचों का वर्णन दिया है। साथ ही गुहिल राजवंश की वंशावली तथा रावल रतनसिंह, राणा हमीर, मोकल, कुम्भा, उदयसिंह, प्रताप, अमरसिंह और राजसिंह आदि यहां के शासकों की मुख्य उपलब्धियों व घटनाओं का विवरण दिया है। इसके अतिरिक्त गहलोतों की दो मुख्य शाखाओं, चूण्डावतों व शक्तावतों का वंशक्रम दर्शाते हुए उनकी मुख्य जीवन घटनाओं का उल्लेख है।

चौहानों का बूंदी, कोटा, सिरोही, जालौर, संचौर, सिवाना और गागरोन पर अधिकार रहा । ख्यातकार ने बूंदी की हकीकत में पहाड़ों, जलाशयों, पेड़-पौधों, बसने वाली जातियों, पडौसी राज्यों, प्रजा पर लगने वाले करों का विवरण प्रस्तुत करते हुए हाड़ा शासकों की उपलब्धियों का विवरण दिया है । सिरोही के देवड़ा, जालौर के सोनगरों ओर सांचोर के सांचोरा चौहानों की वंशाविलयाँ और राव सुरताण और कन्हड़देव जैसे प्रसिद्ध शासकों के सामरिक अभियानों का विस्तार से वर्णन दिया है। जिससे उनकी कुल मर्यादा व स्वतंत्रता की भावना, अडिगता आदि मान बिन्दुओं का बोध होता है। जालौर व संचोर के चोहानों का अवसान किस प्रकार हु आ इसका उत्तर ख्यात में मिलता है। देवड़ों की शाखाओं औरब गाँव -पट्टों की विगत से हम सिरोही के सामन्ती वर्ग का अध्ययन कर सकते हैं।

ख्यात में भाटी राजवंशों के बारे में अनेक महत्वपूर्ण तथ्य और वंशाविलयों का संकलन किया गया है। दूसरे राजवंशों की तरह पौराणिक वंशावली प्रस्तुत करते हुए मथुरा, गजनी भटनेर, लोद्रवा और जैसलमेर के भाटियों का वर्णन दिया है। विजयराज चूडाला, रावल जैसल, रावल सलवाहन, राव मूल राज, रावल दूदा, रावल अइसी जैसे शासकों के संधर्षमय जीवन का वृत्तात हमें बतलाता है कि भाटी किस प्रकार जूझते हुए निरंतर आगे बढ़े और फिर उन्होंने जैसलमेर में अपनी स्थायी राजधानी स्थापित कर एक पृथक पहचान बनाई मरुमंडल को आबाद किया तथा उत्तर की ओर से भारत पर होने वाले हमलों का जवाब दिया।

जैसलमेर की भौगोलिक स्थिति, यहां पर लगने वाले कर उद्योग- धंधे, फसलें, आय के स्रोत आदि अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ ख्यात में मिलती हैं। जैसलमेर के भाटियों से अंकुरित हुई शाखाएँ यथा -केलण, उर्जनोत, जैसा और रूपसी के बारे में बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से वंशक्रम प्रस्तुत कर उनकी मुख्य -मुख्य उपलब्धियों का भान कराया गया है। सामग्री उनकी मारवाइ और बीकानेर में रही भूमिका को समझाने में सहायक और उपयोगी है।

ख्यात में राठौड़ों के बारे में कोई क्रमवार विवरण नहीं मिलता है। राव सीहा, आस्थान, कान्हड़दे, मल्लीनाथ, जगमाल, वीरमदे, गोगादे, राव रिड़मल और राव जोधा के बारे में लिखी गई बातें विशेषतः महत्वपूर्ण हैं। इससे राठौड़ सत्ता के उद्भव और विकास का जहां पता चलता है वहीं पाबू जैसे लोक देवताओं के आदर्श मूल्यों की -जानकारी मिलती है। ख्यात में संकलित बीकानेर और मेड़ता के राठौड़ों की बातें हमें यह बतलाती है कि इन राठौड़ों ने पृथक राज्य स्थापित करने के लिए किस प्रकार संघर्ष किया। बीकानेर के राठौड़ों की दी गयी वंशावली हमें उनका इतिहास समझने में सहायक है। ख्यात में कछवाह नरेशों की वंशावली आदि नारायण से राजा मानसिंह के पौत्र महासिंह तक अंकित है। राजा नल के पुत्र सुप्रसिद्ध ढोला द्वारा ग्वालियर बसाने और मारवाणी के साथ विवाह करने का उल्लेख हु आ है। नरेशों की सामयिक उपलब्धियों पर प्रकाश पड़ता है और इनकी संतित की जागीरी का विवरण विशेष महत्व का है।

पंवारों की वंशावली में आबू और पाटण के पंवार-शासकों की पीढ़ियाँ अंकित हैं। पंवारों की बात में जहाँ बाड़मेर और उमरकोट के सोढा- पंवारों का विवरण दिया है वहीं यहां के शासकों के वैवाहिक संबंधों और जैसलमेर के भाटियों के साथ हुए झगड़ों का उल्लेख है।

इसी प्रकार ख्यात में सोलंकी, झाला, जाड़ेचा, दिहया, चायल और चन्द्रावत आदि राजपूतों की क्रिया-कलापों की जानकारी दी गई है।

इस प्रकार यह ख्यात यहां के शासन प्रबंध, सैन्य -प्रबंध, जागीर व्यवस्था, सामंतों की भूमिका, कृषि-कर्म, अकाल- सुकाल, व्यापार-वाणिज्य नगरों व गांवों की बसावट, जल-स्रोतों, पुरातत्व - अवशेषों, पहाड़ों, घाटियों के अलावा रीति रिवाजों, लोक -आस्थाओं, लोकदेवताओं, ज्योतिष शास्त्र आदि विषयों व पहलुओं के अध्ययन हेतु उपयोगी है । इसके अलावा स्वामी भक्ति, स्वाभिमान की भावना,

दानशीलता, त्याग की भावना, मर्यादा पालन शरणागत-रक्षा, वचन पालन आदि अनेक सांस्कृतिक पहलुओं के सूत्र इस ख्यात में भरे पड़े हैं। कुल मिलाकर मध्ये युगीन राजस्थान के इतिहास -लेखन के लिए इस ख्यात का एक आधारभूत स्रोत के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

इसमें पुराणों व रावो- भाटों की बहियों के आधार पर तैयार की गई वंशाविलयाँ, कुछ पुरानी बातें और प्राचीन घटनाओं के संवत् ठीक प्रतीत नहीं होते- जैसा कि राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने हमारा ध्यान आकृष्ट कराया है, तथापि 16वीं 17 वीं शताब्दी के इतिहास अध्ययन हेतु यह ख्यात महत्वपूर्ण सिद्ध हु ई है। नैणसी की ख्यात की प्रतियाँ अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में उपलब्ध है।

### 32.04.2 उदयभाण चांपावत री ख्यात (मुरारीदान री ख्यात)

17 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखी गई इस ख्यात में जहां महाराजा जसवंतिसंह (1638 - 1678 ई.) के शासन काल तक का मारवाइ के राठौड़ शासकों का क्रमबद्ध इतिहास मिलता है, वहीं राठौड़ों की विभिन्न शाखाओं के बारे में यह ख्यात अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सामग्री संजोये हुए हैं । उक्त महाराजा की मृत्यु के पश्चात् जब मारवाइ - मुगल संघर्ष का सूत्रपात हु आ उस समय यह ख्यात जोधपुर शहर की शहरपनाह के एक ताक में रखा दी गई । कोई 200 वर्ष तक ताक में सुरक्षित रहने के बाद 20 वीं शताब्दी के दूसरे दशक में जोधपुर के किवराज मुरारीदान को प्राप्त हुई । तैस्सीतोरी ने सर्वेक्षण करते समय जब इस ख्यात का अवलोकन किया तब इसमें कुल 980 पत्र थे । 1976 ई. में जब डॉ. रघुवीरिसंह ने किवराजा का संग्रह श्री नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ के लिए खरीद लिया तब यह ख्यात मारवाइ से मालवा पहुँच गई । अब यह ख्यात बहुत ही जीर्ण अवस्था में है । इस ख्यात का उपयोग करने के लिए कुछ प्रतिलिपियाँ करवाई गई जो श्री नटनागर शोध संस्थान और प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में सुरक्षित हैं ।

यह ख्यात नैणसी के समसामयिक उदयभाण चांपावत द्वारा तैयार करवाई गई है । मुरारीदान के संग्रह में से प्राप्त होने के कारण इसे 'मुरारीदान री ख्यात ' भी कहा जाता है । नैणसी की ख्यात में राठौड़ शासकों का इतिवृत्त बातों के रूप में ही दिया है, क्रमबद्ध इतिहास नहीं दिया है परन्तु इस ख्यात में राव सीहा से महाराजा जसवंतसिंह तक क्रमबद्ध इतिहास लिपिबद्ध है । ऐसा लगता है इस ख्यात का लेखन प्राचीन ग्रंथों के आधार पर किया गया है । इसमें मुख्य रूप से शासकों के राज्यारोहण, युद्ध अभियानों भवन निर्माण व जन कल्याण कार्य आदि मुख्य उपलब्धियों के अतिरिक्त चारण व ब्राह्मणों को सांसण में गांव देने, अतः पुर और संतित का विस्तार से वर्णन दिया है । उस समय की राजनीतिक हलचलों को समझाने के लिए यह ख्यात उपयोगी होने के साथ ही शासन प्रबंध, सैन्य व्यवस्था, मुगलों तथा पड़ौसी राज्यों के साथ संबंध और सामाजिक पहलुओं के अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण है ।

इस ख्यात की एक बड़ी विशेषता यह रही है कि इसमें राठौड़ शासकों का ही नहीं उनकी संतित से अंकुरित हुई प्रख्यात शाखाओं का विस्तार से वर्णन मिलता है। ख्यात में ऊहड़, गोगादेव, देवराजोत, करमसोत, मेडतिया, पांचावत, बालावत, मंडला, पातावत, रूपावत, इ्ंगरोत, मंडणोत, करणोत, भोजराजोत कांधलोत शाखाओं की पीढ़ियों अंकित करते हुए उनकी मुख्य उपलब्धियों का ब्यौरा दिया है, जिससे इनकी जागीर-गांवों, सैनिक अभियानों में उनकी भूमिका शाही सेवाओं, उनकी संतित जनकल्याण कार्य आदि कितने ही महत्वपूर्ण बिन्दुओं की जानकारी मिलती है। शाखाओं के बारे इतना विस्तार से क्रमवार विवरण दूसरी ख्यातों में नहीं मिलता। इसलिए इस ख्यात का अपना महत्व है। स्वतंत्र रूप से राठौड़ों की इन शाखाओं का इतिहास लिखने के लिए यह ख्यात एक आधार भूत स्रोत के रूप मैं मान्य हे। प्रारंभ राजस्थान में यह ख्यात सुलभ नहीं होने के कारण गौरीशंकर हीराचंद ओझा आदि इतिहासकार इसका उपयोग नहीं कर सके फिर इसका सम्पादन-प्रकाशन नहीं होने के कारण इतिहास लेखन में बहुत कम उपयोग हु आ है ख्यात का पूर्ण रूप से अध्ययन कर मारवाइ के इतिहास संबंधी कई भ्रांतियों का निराकरण किया जा सकता है और अनेक रिक्त कड़ियों को जोड़ने में भी यह ख्यात उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

## 32.04.3 जोधपुर राज्य की ख्यात

महाराजा मानसिंह (1803 - 1843 ई.) के काल में लिखी गई इस ख्यात में मारवाड़ के राठौड़ों का प्रारंभ से लेकर उक्त महाराजा तक क्रमबद्ध इतिहास लिखा गया है । इसमें नैणसी की ख्यात की तरह बातों, वंशावलियों डिंगलगीतों आदि फुटकर सामग्री का समावेश नहीं कर क्रमवार विवरण दिया है । इसकी पृष्पिका से पता चलता है कि हजारों ग्रंथों के आधार पर यह ख्यात खिडियां आईदान दवारा तैयार की गई । इसका संपादन डा. रघुवीर सिंह एवं डा. मनोहरसिंह राणावत (राव सीहा से महाराजा अजीतसिंह) द्वारा किया गया है । सर्व प्रथम इसमें आदि नारायण से राव सेतराम तक की वंशावली दी गई है । दूसरे ख्यात ग्रंथों की तरह सेतराम को जैचंद का पौत्र होना बताया है । परंतु गौरीशंकर हीराचंद ओझा आदि इतिहासकारों की मान्यता है कि जयचंद गहड़वाल था जो राठौड़ों से बिल्कुल भिन्न है । अतः जयचंद मारवाड़ के राठौड़ों का पूर्वज नहीं हो सकता । पौराणिक आधार पर लिखी गई यह वंशावली संदिग्ध है । आगे ख्यात में मारवाड़ के राठौड़ों के मूल पुरुष राव सीहा से वृत्तांत दिया है जिसमें प्रत्येक शासकों के राज्यारोहण, युद्ध अभियानों और अन्य उपलब्धियों के अलावा अन्तःपुर का विवरण दिया है । परंत् प्रारंभ के शासकों के बारे में अधिकांश बातें इतिहास की कसौटी पर खरी नहीं उतरती । ऐसा लगता है कि राठौड़ों का शौर्य प्रदर्शित करने के लिए अनेक काल्पनिक बातें जोड़ दी हैं; तथापि राठौड़-सत्ता का क्रमिक विकास कैसे हुआ इसकी जानकारी ख्यात कराती है । राठौड़ों ने मोहिलों से खेड हस्तगत किया फिर अपनी सत्ता जमाने के लिए वे निरंतर संघर्ष करते रहे । अन्तः रावल मल्लीनाथ ने पश्चिमी भूभाग पर आधिपत्य जमा कर राठौड़ों के प्रभुसत्ता कायम करने में सफलता पायी और फिर चूण्डा मंडोर प्राप्त करने में सफल हुआ ।

राव जोधा ने जोधपुर नगर की स्थापना कर राठौड़ों के राज्य का स्थायी रूप से बीजारोपण किया । ख्यात में राव जोधा के बाद की घटना काजी सीमा तक सही प्रतीत होती हैं । ज्यों-ज्यों ख्यात लेखन का कार्य आगे बढ़ता है । ख्यात का विवरण और अधिक पुष्ट होता दिखाई देता है । जोधपुर का राव मालदेव शक्तिशाली शासक हुआ । उसने न केवल मारवाड़ के अनेक परगनों पर आधिपत्य जमा कर अपनी शक्ति का केन्द्रीकरण किया, बिल्क मेड़ता एवं बीकानेर का राज्य हस्तगत कर अपने राज्य का विस्तार भी किया । इस विस्तारवादी नीति के कारण अंततः : उसे शेरशाह सूरी से परास्त होना पड़ा । इन सारी घटनाओं पर जहां विस्तार से प्रकाश पड़ा है वहीं सैनिक शक्ति के कर्णधार यहां के सामन्तों की भूमिका उभर कर सामने आई है । राव चन्द्रसेन का जीवन अकबर के साथ संघर्ष करने में व्यतीत हुआ जबिक मोटाराजा उदयसिंह ने शाही सेवा में प्रविष्ट होकर राज्य अर्जित करने में सफलता

पाई और इसके बाद यहां के शासक निरंतर शाही सेवा में बने रहे । उनकी सामरिक उपलब्धियाँ के बदले मृगल सम्राटों की ओर से मिले मनसब, सिरोपाव आदि प्रस्कारों का उल्लेख हुआ है ।

मुगल सत्ता के साथ संघर्ष और संधि समझौतों और सेवाओं दोनों पहलुओं का दिग्दर्शन ख्यात में हु आ है । इसी तरह मराठों के साथ हु ए संघर्ष का उल्लेख मिलता है । राजगद्दी को लेकर अनेक बार परस्पर झगड़ा का दोर-दौरा भी रहा और यहां के नरेशों ने अपनी बहन बेटियों का संबंध मुगलों के साथ भी किया । ख्यातकार ने ऐसे तथ्यों को छुपाने का प्रयास नहीं किया बल्कि खुलकर कलम चलाई है । कुंवर बख्त सिंह ने अपने पिता महाराजा अजीतसिंह की हत्या कर राज्य की बागडोर संभाली, ख्यात में इसका संकेत भी मिलता है ।

शासन प्रबंध में राजपूतों के अलावा ओसवाल, पंचोली और ब्राहमणों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा । ख्यातकार के यथा स्थान ऐसे लोगों की भागीदारी को दर्शाने का प्रयास किया है, साथ ही चारणों व ब्राहमणों की साहित्यिक सेवाओं तथा सांसण के रूप में मिले गांवों का उल्लेख भी किया है । महाराजा मानसिंह के काल में नाथों का जबरदस्त प्रभाव रहा । अनेक परिस्थितियों के कारण जो बदलाव आये उनका तथ्यात्मक विवरण ख्यात में अंकित है । महाराजा मानसिंह के काल की घटनाओं का वर्णन इतने विस्तार के साथ किया है कि इसने एक पृथक ख्यात का स्वरूप ले लिया है ।

ख्यात में प्रत्येक शासक की रानियों, कुंवर व कुंविरयों की जानकारी दी है। जिससे वैवाहिक संबंधों और संतित का बोध होता है। समाज शास्त्रीय अध्ययन के लिए ये सामग्री उपयोगी हैं। मारवाड़ के इतिहास के पिरप्रेक्ष्य में मेवाड़, जैसलमेर, कोटा, बूंदी, बीकानेर, जयपुर आदि राज्यों की घटनाओं का उल्लेख हुआ है जो इन राज्यों के इतिहासलेखन हेत् उपयोगी है।

इस मूल ख्यात की प्रतिलिपियों कर अलग-अलग महाराजाओं (राव चन्द्रसेन, महाराजा जसवंतिसंह, महाराजा अजीतिसंह, महाराजा अभयसिंह, महाराजा विजय सिंह और महाराजा मानिसंह) की ख्यातें बना ली हैं, परंतु यह ध्यान रहे कि ये सब जोधपुर राज्य की ख्यात के ही अंश हैं। अद्याविधि इस ख्यात का पूर्ण रूप से सम्पादन प्रकाशन नहीं हु आ है केवल महाराजा अजीत सिंह तक इसका प्रकाशन किया गया है।

#### 32.04.4 दयालदास री ख्यात

दयालदास सिंढायाच चारण ने प्रारंभ से लेकर महाराजा रतनसिंह (1851 ई.) तक का बीकानेर का इतिहास इस ख्यात में संजोने का प्रयास किया है । वैसे यह बीकानेर राज्य की अथवा राठौड़ों की ख्यात है । परंतु दयालदास सिंढायच द्वारा लिखी जाने के कारण इसका नाम ' 'दयालदास री ख्यात " रख दिया गया है । बीकानेर में ख्यात-लेखन की परंपरा के सूत्र हमें 17 वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही दिखाई देते हैं । अनूप संस्कृत पुस्तकालय में संग्रहीत ग्रंथों से पता चलता है कि बीकानेर के राजा रायिसंह (1574 - 1612 ई.) के काल में 'बीकानेर के राठौड़ री ख्यात सीहैजी सूं तथा " राठौड़ री बात सीजी सू रायिसंह जी ताई " और "दलपत विलास" जैसी गद्य रचनाओं का प्रणयन हु आ । फिर आगे ख्यात शैली के आधार पर ही महाराजा अनूपिसंह के शासन काल (1669 - 98 ई.) में बीकानेर नै धणीयाँ री हकीकत " तथा " अनूपिसंह जी रै मुनसब ने तलब री विगत ", जैसी ऐतिहासिक रचनाओं का लेखन कार्य जारी रहा । अनंतर महाराजा गजिसंह के काल (1787-1828 ई.) में ' 'बीकानेर राठौड़ री ख्यात महाराजा सुजानिसंह जी सूं गजिसंह जी ताई " तैयार करवाई गई, जो उस समय विकिसित

हुई ख्यात शैली का एक अनुपम उदाहरण है । जैसािक डा. घनश्याम देवड़ा ने लिखा है । उस समय तक ख्यात लेखन का क्षेत्र एक घटना अथवा कतिपय शासकों की मुख्य उपलब्धियों तक ही सीिमत रहा । समूचे राजवंश की क्रिमिक इतिहास लेखन की धारा प्रारंभ नहीं हुई । दयालदास ने इस अभाव की पूर्ति कर ख्यात लेखन में पूर्व में लिखी गई समूची सामग्री का ध्यान पूर्ण अध्ययन करते हुए बीकानेर के राठौड़ों का क्रमबद्ध विस्तृत इतिहास तैयार किया । अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में दो प्रतियों में यह ख्यात उपलब्ध होती है । इसके एक भाग का सम्पादन व प्रकाशन डा. दशरथ शर्मा ने करवाया । डा. घनश्याम देवड़ा ने 'परम्परा ' (जोधपुर से प्रकाशित) में एक विशेष विस्तृत लेख लिखकर इस ख्यात के महत्व पर प्रकाश डाला है ।

राव सीहा से राव जोधा तक का वृतांत पुरानी ख्यातों व बातों के आधार पर लिखा गया है जो मूलत: जोधपुर राज्य की ख्यात से मिलता जुलता है। शासकों की रानियों व कुंवर कुंविरयों के नामों तथा घटनाओं के संवतों में कुछ भिन्नता जरूर है। ख्यात में आगे बीकानेर के संस्थापक राव बीका के बारे में जो वर्णन दिया है वह महत्वपूर्ण है। राव बीका का वर्णन उनकी जन्म कुंडली से प्रारंभ होता है फिर यह बताने की चेष्टा की गई है कि बीका किस प्रकार मारवाड़ छोड़कर जंगल गया और भाटियों से संघर्ष कर उसने बीकानेर की स्थापना करने में सफलता पायी तथा बाद में जाटों व चौहानों से टक्कर लेते हुए अपने राज्य का विस्तार किया।

इस प्रकार ख्यात में प्रत्येक शासक की मुख्य उपलब्धियों, सैनिक अभियानों का वर्णन करते हुए केन्द्रीय शक्ति के साथ संबंध, जोधपुर और जैसलमेर आदि पडौसी राज्यों के साथ संघर्ष आदि घटनाओं का विस्तार से वर्णन प्रस्तुत करते हुए घटनाओं की पुष्टि हेतु समसामयिक कवियों के रचे वीर गीत, कवित्व निसाणी, वचनिका और दोहे अंकित किये हैं।

ख्यात में बीकानेर के राठौड़ों का वर्चस्व दर्शाने के लिए जहां कुछ घटनाओं का बढ़ा कर वर्णन किया गया है वहीं गौरव को खंडित करने वाली घटनाओं की अनदेखी की गई है । शिलालेखों और पुरालेखीय सामग्री का प्रयोग नहीं करने के कारण तिथियों में त्रुटियाँ रह गई है परन्तु इस प्रकार की किमियाँ राज्याश्रय में लिखी दूसरी ख्यातों में भी मिलती है ।

इन कमियों के बावजूद " बीकानेर की ख्यात ' का विशेष महत्व रहा है । बीकानेर के राठौड़ों पर प्रकाश डालने वाली यह एक वृहदाकार ख्यात है और इसका भरपूर उपयोग न केवल कर्नल पाउलेट ने गैजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट तैयार करने में किया बल्कि गौरीशंकर हीराचंद ओझा रचित बीकानेर राज्य के इतिहास का यह आधार ग्रंथ प्रमाणित हुआ । दयालदास की अन्य रचनाओं में 'देश दर्पण ' एवं आर्याख्यानकल्पदुम प्रमुख हैं । दयालदास वस्तुत : राजस्थान की परम्परागत ख्यात शैली का अन्तिम रचनाकार हैं ।

#### 32.04.5 बाकीदास री ख्यात

इस ख्यात की रचना जोधपुर के महाराजा मानसिंह (1803 - 43 ई.) के दरबारी किव बांकीदास आशिया द्वारा की गई। इसमें दूसरी ख्यातों की तरह किसी राजवंश का क्रमबद्ध इतिहास नहीं लिखा गया है। कितपय विशिष्ट घटनाओं का तथा ऐतिहासिक पुरुषों के जीवन पहलुओं के बारे में कुछ रोचक और उल्लेखनीय टिप्पणियाँ लिखी गई हैं। यों इस ख्यात में जहां राठौड़, यादव (भाटी), गहलोत, कछवाह और चौहान शासकों व सामन्तों की सामरिक उपलब्धियाँ और प्रमुख शासकों की रानियों व कुंवर-कुंवरियों

के नाम दिये हैं, वहीं मराठा, सिक्ख, मुसलमान, अंग्रेज, ओसवाल, ब्राहमण और चारण आदि जातियों के कुछ विशिष्ट पुरुषों के बारे में टिप्पणी लिखी गई हैं। यों देखा जाय तो बांकीदास का उद्देश्य कोई ख्यात लिखने का नहीं था। उसने अपनी जानकारी के लिए रुचि के अनुसार जो बातें किसी से सुनी अथवा कोई बात उसे कहीं लिखी हुई मिली उसे अपने पोथी में नोट कर लिया। इसलिए इन छोटी-छोटी बातों व टिप्पणियों का कोई क्रम नहीं है। इस ख्यात के सम्पादक पं. नरोत्यदास स्वामी ने इन बातों को क्रमवार कर ख्यात का प्रकाशन किया है।

टिप्पणी के रूप में छोटी -छोटी बातों का यह संग्रह ख्यात लेखन परंपरा का निर्वाह तो नहीं करता परंतु अनेकानेक महत्वपूर्ण सूचनाओं का संग्रह होने के कारण विद्वानों ने इस ग्रंथ को ख्यात की श्रेणी में समाहित कर लिया है । सैनिक अभियानों और राजाओं के अतः पुर संबंधी जो बातें लिखी गई हैं वे प्रायः दूसरी ख्यातों से मिलती जुलती हैं परंतु कुछ घटनाओं और व्यक्ति विशेष के बारे में ऐसी बातें भी ख्यात में लिखी मिलती हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं - जैसे, हाजी खां और महाराणा उदयिहं के बीच युद्ध हु आ उस समय राव मालदेव ने हाजी खां के रक्षार्थ योद्धा भेजे उनके खांयवार नाम व घोडों का उल्लेख, बीकानेर के समय महाराजा जोरावरिसंह के साथ धोखा करने वाले मुत्सिद्दयों के नाम, हल्दीघाटी के युद्ध में काम आये महाराणा के भाइयों के नाम आदि । इसके अतिरिक्त चारण, मराठा, सिक्ख इत्यादि जातियों के बारे में ऐसी विचित्र बातें लिखी मिलती हैं जिनका उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता है । इतिहास की विविध सूचनाओं का एक बड़ा भंडार होने के कारण गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने इसे 'इतिहास का खजाना ' कहा है ।

कुल मिलाकर देखा जाय तो यह ख्यात राजनीतिक इतिहास के साथ ही कला व साहित्य यहां के रीति -रिवाज सामाजिक मान्यताएँ एवं धारणाएँ आदि सांस्कृतिक पहलुओं संबंधी कई रिक्त कड़ियों को जोड़ने में सहायक है । इसके लिए पूरी ख्यात का बारीकी से अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है ।

### 32.04.6 जैसलमेर री ख्यात

यह ख्यात जैसलमेर राज्य के प्रशासनिक अधिकारी अजीत मेहता द्वारा 19 वीं शताब्दी के मध्य में लिखी गई। इसमें आदि नारायण से श्री कृष्ण तक वंशावली अंकत कर लाहौर, हिसा, भटनेर, मरोठ, तन्नोट, लुद्रवा और जैसलमेर के रावल वेरीशाल तक के शासकों का संक्षिप्त किन्तु बहुत ही महत्वपूर्ण विवरण दिया है। प्रत्येक शासक के सैनिक अभियानों, भवन निर्माण कार्य आदि मुख्य उपलब्धियों का ब्यौरा देते हुए उनकी रानियों व कुंवर-कुंविरयों की जानकारी दी है, परंतु इस ख्यात में जोधपुर राज्य की ख्यात और दयालदास की ख्यात की तरह शासकों के क्रिया -कलापों का विस्तार से वर्णन नहीं हु आ है। डा नारायण सिंह भाटी ने इस छोटे ग्रन्थ का सम्पादन करके 'परम्परा ' में इसे छपवाया है।

ख्यात के अध्ययन से केन्द्रीय सत्ता के साथ संबंध, पडौसी राज्यों के साथ संघर्ष, जैहर, शाके, शासन -प्रबंध, गढ,म कोटडिया व जलाशयों का निर्माण कार्य गांव बसाने कला व साहित्य के क्षेत्र में शासकों का योगदान, देवी देवताओं के प्रति आस्था, तीर्थ यात्राएँ, दान पुण्य आदि अनेक पक्षों की जानकारी मिलती हैं। भाटी शासकों की संतित से न केवल भाटियों की अनेक प्रबल शाखाएँ अंकुरित हु ई बिल्क जाद अहीर, चकता - मुसलमान, रेबारी, गूजर, सुथार, नाई, माहेश्वरी, ओसवाल आदि जातियाँ बनी, इसका उल्लेख भी यथा स्थान ख्यात में मिलता है।

भाटियों ने उत्तर की ओर से आने वाले यवनों से लम्बे समय तक संघर्ष कर अपनी संस्कृति और सामाजिक परंपराओं को कैसे जीवित रखा इसके बारे में कई संकेत ख्यात में मिलते हैं। इस ख्यात के विवरण से विदित होता है कि भाटी पंजाब से राजस्थान में आये तथा उन्होंने पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में एक लम्बे समय तक राज्य किया था ऐसी धारणा है कि भाटियों ने गजनी, सियालकोट, लहावार आदि क्षेत्रों पर शासन किया तथा मारोठ, भटनेर, देशवर आदि नगरों की स्थापना भी की थी।

ख्यात के प्रारंभिक वर्णन में सैना के जो आंकड़े बढ़ा चढ़ाकर दिये हैं वे संदिग्ध हैं और वैवाहिक संबंधों के सूत्र के भी विश्वास करने योग्य नहीं है; तथापि बाहरी आक्रमणों के जो संकेत दिये हैं उनपर विचार किया जा सकता है । 16 वीं शताब्दी के बाद की घटनाएँ इतिहास की कसौटी पर खरी उतरने के कारण इसका विशेष महत्व रहा है । वैवाहिक सूत्र और घटनाओं के संवत् जैसलमेर की तारीख से मिलते जुलते हैं, परंतु कुछ जानकारियाँ विशेष होने के कारण इस ख्यात का अपना महत्व है । वास्तव में इस ख्यात का महत्व समकालीन सामग्रियों की जानकारियों के साथ मिलाकर देखने मे है । डा. घनश्याम देवड़ा का विचार है कि इस ख्यात के सहारे समस्त उत्तरी -पश्चिमी भारत के नये इतिहास पर विचार किया जा सकता है । यह ख्यात जैसलमेर और इसके पूर्व के भाटियों के इतिहास- अनुसंधान हेत् उपयोगी है ।

### 32.04.7 गोगुंदा की ख्यात

मेवाइ में संस्कृत भाषा का ही जयादा बोलबाला रहा इसिलये प्रारंभ में संस्कृत में प्रशस्तियां उत्कीर्ण करने की परंपरा रही फिर राजस्थानी पद्य की विधाएँ विकसित हुई और ऐतिहासिक घटनाओं तथा किसी शासक विशेष की उपलब्धियाँ उजागर करने के लिए रासो, (राणा रासो, खुमाण रासो, समतरासो), विलास (राजविलास, भीमविलास), प्रकाश (राज प्रकाश, महाव जस प्रकास) आदि ग्रंथ रखे गये। लेकिन ऐतिहासिक बातें बहुत कम लिखी गई। केवल' 'एक रावल राणा जी री बात ' प्रकाश में आई है। 18 वीं शताब्दी तक यहां कोई ख्यात लिखी गई हो इसका हमें कोई प्रमाण नहीं मिलता। महाराणा शंभूसिंह ने इतिहास लिखवाने के लिए 19 वीं शताब्दी के अन्त में जब इतिहास कारखाने की स्थापना कर कविराज श्यामदास को इसका कार्य सींपा तब मेवाइ के सभी ठिकानेदारों को अपने-अपने ठिकानों का इतिहास प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक निर्देश दिये गये। ठिकानेदारों ने अपने ठिकानों में संग्रहीत पट्टे- परवाने, वंशावलियाँ, आदि सामग्री के आधार पर ख्यातें और तारीखें तैयार कर इतिहास कारखाने में प्रस्तुत की। यों मेवाइ में ख्यात लेखन का सिलसिला 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रारंभ हुआ।

'गोगूंदा की ख्यात ' मेवाइ के इतिहास कारखाने के निर्देश का ही परिणाम था । इस वृहदाकार ख्यात में न केवल गोगूंदा के झाला सरदारों (अज्जा से अजयिसंह द्वितीय तक) की राजनीतिक घटनाओं व उनके अन्तःपुर का विस्तार से वर्णन मिलता है बल्कि यहां के पहाइ, घाटियाँ, नदी -नाले, मंदिर, जलाशय, स्मारक, इमारतें, बाग बगीचे जातियाँ, गोगूंदा के जागीरदारों - कुंवरों व भँवरों के कुरब कायदे, तलवार-बंधी और विवाह की रस्में, भाई बंध ठिकानों, सगे -संबंधियों का वर्णन, तीर्थ यात्राएँ आखेट

वर्णन, राजपूतों की शाखाएँ, चाकरी, भूमि विवाद, सीमा संबंधी झगड़े -मेवाड के सरदारों की दरबार में बैठक (दिल्ली दरबार 1877 ई.) भारत के प्रमुख 83 रियासतों को तोपों की सलामी, अतिथि -सत्कार, भोमियों का वर्णन, जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह (द्वि.) की मृत्यु के समय मेवाड़ की हलचलों और बीकानेर की विगत आदि अनेक घटनाओं और पहलुओं का वर्णन हुआ है।

गोगूंदा प्रथम श्रेणी का ठिकाना था। यहां के उमरावों को उनकी उपलब्धियों के अनुसार समय -समय पर अनेक गांव जागीर में मिले इसकी पुष्टि के लिए ख्यातकार ने जागीर पट्टों की प्रतिलिपियाँ ख्यात में दर्ज की है तथा महाराणा की ओर से प्राप्त कुछ परवानों की नकलें भी ख्यात में अंकित की है। इससे ख्यात का महत्व और बढ़ गया है।

अजयसिंह की पुत्री गुलाब कुंवर के विवाह के समय कोठार में खाद्य सामग्री बर्तन और अन्य वस्तुएँ इकट्ठी की गई, उसकी सूची दी है। इससे वस्तुओं के माप तोल व भाव का पता चलता है। विवाह उत्सव के वर्णन से यहां के रीति - रिवाजों का बोध होता है। इसी प्रकार गद्दीनशीनी के समय तलवार बंधी का वर्णन यहां की परंपरा को समझने में सहायक है। ठिकाने के कुरब कायदों की लम्बी सूची में 144 सूत्र संजोये गये हैं। इससे शिष्टाचार संबंधी नियमों और महाराणा व जागीरदारों के बीच के सांस्कृतिक संबंधों का भान होता है।

ख्यात में हालस, झूंपी बराड, मापाकर, चंवरी कर के बारे में जानकारी दी गई है। इससे जहां िठकानों की आय स्रोत का पता चलता है, वहीं यहां बसने वाली जातियों, उनका व्यवसाय, ठिकाने के साथ उनके संबंध आदि कितनी ही नवीन जानकारियाँ कराने में यह ख्यात सहायक है। इस प्रकार ख्यातकार का दृष्टि कोण काफी व्यापक है। वह केवल ठिकाने की राजनीतिक घटनाओं तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि सामाजिक, धार्मिक आर्थिक पहलुओं को कलमबद्ध करते हुए दूसरे ठिकानों और मेवाइ के इतिहास के अलावा पडौसी राज्य मारवाइ की कुछ घटनाओं का विवरण प्रस्तुत कर ठिकाने के महत्व को आंकता है।

उपर्युक्त वर्णित ख्यातों के अलावा ' शाहपुरा राज्य की ख्यात ', ' कछवाहों की ख्यात ', ' मारवाड़ की ख्यात ',' मूंदीयाड री ख्यात ", " तँवरों री ख्यात ", " खीचीयों री ख्यात ", भाटियों री ख्यात ', ' उम्मेदिसंह हाडा बूंदी री ख्यात ' दाद्पंथियों री ख्यात ' 'सन्यासियों री ख्यात, ' कायस्थों री ख्यात ' चारणों री ख्यात " हकीमां री ख्यात ', ' सिंध री ख्यात ' संग्रहालयों में संग्रहीत है जिनका सम्पादन - प्रकाशन किया जाना शेष है ।

# 32.05 इकाई सारांश

इस प्रकार हमने इस इकाई के माध्यम से उस राजस्थानी ऐतिहासिक साहित्य का पिरचय करवाया है जिसे 'ख्यात कहा जाता है। यह साहित्य किसी व्यक्ति, घटना या समय विशेष का ऐतिहासिक चित्रण करता है। 17 वीं शताब्दी से इसका क्रमबद्ध विवरण प्राप्त होने लगता है। इतिहासकार इसके लिये तत्कालीन मुगल दरबार के लेखन को उत्तरदायी ठहराते हैं। ख्यात लेखन की परम्परा मुख्यत राजस्थान के पिश्चमी क्षेत्र में ही उपलब्ध होती है। इन ऐतिहासिक रचनाओं में नैणसी, उदयभाण, बाकीदास व दयालदास की रचनाएँ प्रमुख हैं। ये रचनाएँ राजस्थान के विभिन्न राजवंशों का प्राचीनकाल से संक्षिप्त परन्तु मध्यकाल से विस्तृत इतिहास प्रस्तुत करती है। इनकी सूचनाओं से न केवल

राजनैतिक घटनाओं का ताना-बाना बुना जा सकता है बिल्क समकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक इतिहास भी समझा जा सकता है। जैसे नैणसी की 'परगना की विगत' एवं दयालदास की देश दर्पण' रचनाएँ वस्तुत: मारवाइ व बीकानेर का गजेटियर है इतिहासकारों की यह धारणा है कि ख्यातकारों ने अपने संरक्षक राजवंशों की उपलिब्धियों का बढ़ा चढ़ाकर विवरण दिया है एवं अतिरंजित स्तुतियाँ की हैं पर जब मुगल दरबारी लेखन को इतिहास का एक सबल स्रोत स्वीकार कर लिया जाता है तो इसके महत्व को नकारने में कोई ऐतिहासिकता नहीं है। प्रश्न इसके उपयोग को लेने का है और सावधानी बरतने का है। साथ ही यह साहित्य एक समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा का तो परिचय देता ही है।

## 32.06 अभ्यासार्थ प्रश्न

### (अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये : -

- (1) ख्यात साहित्य से क्या तात्पर्य है?
- (2) क्या ख्यात साहित्य से तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था का भान होता है ।
- (3) बांकीदास की रचनाओं का क्या महत्व है।
- (4) जैसलमेर री ख्यात राजस्थान ही नहीं बल्कि उतरी पश्चिमी भारत के इतिहास के लिये क्यों महत्वपूर्ण हैं ।

## (ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये: -

- (1) 'नैणसी री ख्यात' के महत्व पर प्रकाश डालिये।
- (2) दयालदास का एक ख्यातकार के रूप में क्या स्थान है?
- (3) क्या आप सहमत हैं कि ख्यात रचनाएँ मात्र शासकों की स्तुतियाँ हैं।

# इकाई सं. 33 "राजस्थान का सन्त साहित्य"

### इकाई संरचना

- 33.01 उद्देश्य
- 33.02 प्रस्तावना
- 33.03 पौराणिक सम्प्रदाय
- 33.04 नाथ सम्प्रदाय
- 33.05 रामानन्दजी की भक्ति परम्परा
- 33.06 राजस्थान के सन्त
- 33.07 सन्त साहित्य का प्रतिपाद्य
  - 33.07.1 गुरु-महिमा
  - 33.07.2 ईश्वर और जीव का अभेद सत्संग
  - 33.07.3 नाम महिमा
  - 33.07.4 सहजावस्था
  - 33.07.5 सहजावस्था
  - 33.07.6 योग का प्रभाव
  - 33.07.7 रहस्यवादिता
  - 33.07.8 बाह्याडम्बर का विरोध
  - 33.07.9 समन्वय दृष्टि
  - 33.07.10 अभेद दृष्टि
  - 33.07.11 नैतिक आदर्शों की स्थापना
  - 33.07.12 लोकजीवन का परिष्कार
- 33.08 इकाई सारांश (संत साहित्य की प्रासंगिकता)
- 33.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

## 33.01 उद्देश्य

इस प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ पायेंगे कि : -

- (1) राजस्थान की समृद्ध संस्कृति में सन्त साहित्य का किस प्रकार का योगदान है ।
- (2) राजस्थान शौर्य के लिये ही नहीं बल्कि सन्तों की मानव कल्याण की भावना की वाणी से भी जाना जाता
- (3) आडम्बर एवं रूढीवादिता का विरोध राजस्थानी समाज का उद्देश्य सदा रहा है ।
- (4) लोक विश्वास, लोक कल्याण व लोक संस्कृति के निर्माण में सन्तों एवं सन्त साहित्य की अमूल्य भूमिका रही है ।

### 33.02 प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति के चिन्तकों ने दुर्लभ मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है और उसे कैसे सार्थक बनाया जा सकता है, इस पर सापेक्ष विचार किया है। प्रसिद्ध संत गोरखनाथ ने तो 'भरी- भरी खाई के ढरी-ढरी गईबा' कहकर उसे भौतिक सुविधाओं से जीवन को परिपूर्ण मान कर उसे सार्थक मानने वालों का उपहास किया है। शंकराचार्य ने ईश्वर और जीव के अभेद का कथन करते हुए धर्म के दो मार्ग बताएं हैं - प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग। परन्तु हमारे चिन्तकों ने जीवन को न केवल प्रवृत्ति परक माना है और न ही केवल निवृत्ति परक। वैदिक साहित्य भी जीवन के चार उद्देश्य मानता है - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इन चारों को सिद्ध करने के लिये मनुष्य के जीवन को शतायु मानकर उसे ब्रहमचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास- इन चारों अवस्थाओं में विभाजित करता है अर्थात् वेद के दृष्टि कोण एकांगी न होकर सर्वांगीण है, समन्वयवादी है, वह प्रथम मनुष्य के जान की बात करता है, फिर गृहस्थ को महत्व देते हुए आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व सुस्थिर समाज की अवधारणा करता है और वानप्रस्थ में धीरे- धीरे मनुष्य को प्रवृत्ति से निवृत्ति की और उन्मुख करते हुए अन्त्सोगत्वा उसे संन्यास के योग्य बनाने का प्रयास करता है।

वेद की संहिताओं में एकेश्वरवाद की अवधारणा स्पष्ट प्रतीत होती है, जब वेद यह उद्घोष करता है कि सत्य या ब्रह्म एक ही है, विपश्चित् लोग अनेक प्रकार से उसे सम्बोधित करते हैं - 'एकं सद्विप्रा बहु धा वदन्ति' वेद की संहिताओं में मिलने वाले स्तुतिगान निराकार ईश्वर के प्रति वैदिक जन का समर्पण ही है । ब्राह्मण ग्रन्थों में बताए गए विभिन्न प्रकार के यज्ञ उन स्तुतियों को या किहये भिक्त स्रोतों को मूर्तरूप देने का एक प्रयास ही है । वेद की संहिता और ब्राह्मण के साथ जुड़ा उपनिषद् साहित्य सृष्टि रचना के प्रति और विशेष रूप से उसके स्रष्टा के प्रति मनुष्य मन की विभिन्न अवधारणाओं के उद्गार है । यहां पर हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि वैदिक धर्म जिस सामाजिक उदार दृष्टि पर खड़ा था, वह समाज के विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित रह पाया अर्थात् वह लोक - धर्म का स्वरूप नहीं ले पाया ।

ऐसी स्थिति में ईश्वर की सत्ता के आधार पर विकसित हुए वैदिक दर्शन व धर्म के स्वरूप का विरोध प्रारंभ हुआ । इसकी अगुवानी की बौद्धों ने । इनके साथ ही उपनिषद् कालीन श्रमण संस्कृति के विकसित एकांगी जैन-धर्म ने भी वेदों के कर्मकाण्ड व पूजा पद्धित का विरोध किया । भारतीय संस्कृति ने इन्हें आत्मसात् तो किया, पर यह अवलम्ब भी स्थायी सिद्ध नहीं हु आसम्भवतः उसका कारण था इन दोनों ही सम्प्रदायों ने स्वीकार की हुई अकाल -संन्यास की परम्परा ।

इसी प्रकार जैन- सम्प्रदाय की स्थिति हो गयी । जैन- सन्यस्त जीवन अकाल संन्यास के दोषों से वैसा तो आवृत नहीं हु आ जैसे बौद्ध सम्प्रदाय । पर अहिंसा का सिद्धांत तत्कालीन राजनैतिक जीवन के लिये बहुत उपकारक नहीं था और जिस वैश्य -वर्ग ने इसे अपनाया उनके लिये ।

## 33.03 पौराणिक सम्प्रदाय

वेद- धर्म के विरोध में उभरे इस स्तर का प्रभाव उनके अनुयायियों पर भी पड़ा । वैदिक अदिति, विष्णु मरूद्गण के स्वामी शिव, गणों के अधिपति गणपति और सूर्य की उपासना करने वालों ने अपने -अपने देवता के साकार स्वरूप की कल्पना करना प्रारंभ किया और धीरे- धीरे उनकी मूर्तियों की पूजा

-पद्धतियों का विकास हु आ । इन्हीं से शाक्त, वैष्णव, शैव, गाणपत्य और सूर्य-सम्प्रदाय बने । श्रुतियों का स्थान स्मृतियां लेने लगीं । वेद के स्थान पर पुराणों का पठन-पाठन लोकप्रिय हु आ भागवत धर्म अर्थात् श्री कृष्ण के विभिन्न रूपों की पूजा होने लगी- धीरे- धीरे अवतार वाद की कल्पना ने साकार रूप लिया ।

राजस्थान में बसन्तगढ, सांभोली, प्रतापगढ़, मारवाइ का गोठ-मांगलोद ये स्थान शाक्त-सम्प्रदाय की लोकप्रियता के परिचायक हैं। यहां के मध्यकालीन शासकों ने करणी जी, नागणेखी सचिवालय या बाणमाता के रूप में शिक्त की उपासना शुरु की। उदयपुर, बुचकुला, पीपाइ, चित्तौइ, आदि स्थानों पर मिलने वाले वैष्णव मंदिर और रामकृष्ण की भिक्त के रूप में विकसित परम्परा स्वयं वैष्णव सम्प्रदाय के प्रचलन का प्रमाण है। केकीन्द, सारणेश्वर, बिजौलिया, अथूणां, उदयपुर (एकलिंग) के मंदिर और गृहिलों के द्वारा लकुलीश सम्प्रदाय के प्रचार के लिये किए गए प्रयत्नों के लिये किसी नये-परिचय की आवश्यकता नहीं है। विविध संग्रहालयों में उपलब्ध गणेश की मूर्तियां और गृहिलों के द्वारा लकुलीश सम्प्रदाय के प्रचार के लिये किए गए प्रयत्नों के लिये किसी नये परिचय की आवश्यकता नहीं है। विविध संग्रहालयों में उपलब्ध गणेश की मूर्तियां और रोहेड़ा, चन्द्रमहासन, भीनमाल, पालड़ी और चित्तौड़ के सूर्य मंदिर राजस्थान के गणपित और सूर्य की सगुण उपासना ने प्रमाण के रूप में उदाहत किए जा सकते हैं। इन देवताओं की स्मार्त-पद्धित से पूजा - अर्चना ने निस्संशय सगुण - भिक्त के विकास में अमूल्य योगदान दिया है। परन्तु इन सम्प्रदायों द्वारा स्वीकार किये तांत्रिक उपासना के मार्ग की जन-सामान्य अधिक आकृष्ट हु आ -तन्त्र का प्रभाव जैन और बौद्धों पर भी पड़ा। तन्त्र साधना द्वारा सिद्धियां प्राप्त कर अनेक चमत्कारों के कारण जनता इस वामावार की ओर प्रवृत्त होने लगी। देवी -तन्त्र, शैव-तन्त्र आदि ग्रंथों का लेखन हु आ।

इधर बौद्ध और जैनों की साधना थी, उधर तांत्रिक उपासना की वामाचारी पद्धतियाँ, कहीं सगुण उपासना में मूर्तिप्जा की लोकप्रियता तो कही अब तक भारत में प्रवेश पाये इस्लाम का प्रभाव था। सामान्य जन भटकाव बढ़ने लगा, उनकी अन्यमनस्कता बढ़ी, वे किंकर्त्तव्यिवमूढ से हो गये। मौर्यकाल के पश्चात और विशेषकर मध्ययुग के मध्य आते-आते कृषि क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन आये और जन-जन के श्रम का वर्गीकरण तेजी से हुआ और श्रम का लाभ श्रमिकों को कम मिलने लगा। इस बीच नगरीय मांग व बढ़ते व्यापार ने कारीगर- श्रमिकों के समूह भी तैयार कर दिये जिन्हें भी अपने श्रम का लाभ कम मिला। भू-उत्पादन पर टिके नये सामन्तवाद तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बढ़ रहे पुरोहित व व्यापारी वर्ग ने एक दूसरी समानान्तर स्थिति उत्पन्न कर दी। समाज कई आकारों में बंटने लगा और जन समूह सामाजिक व आर्थिक स्तर पर निराशा के घेरे में फंसता चला गया।

### 33.04 नाथ - सम्प्रदाय

पूर्व मध्यकाल में ऐसे जन समूह को मच्छिन्द्रनाथ और गोरखनाथ ने अपने झंडे के नीचे लाने में सफलता प्राप्त की - उनमें पाशुपत, लकुलीश, शाक्त, सिद्ध और मुस्लिम भी प्रवेश पा गये। गौरखनाथ ने षडंग योग के स्थान पर अष्टांग योग का प्रचार किया। वे योग से मुक्ति प्राप्त करने के ज्ञान मार्ग के प्रवर्तक थे। 'जैसा ब्रहमाण्ड में है वैसा ही शरीर में है, इस सिद्धान्त के अनुसार इस मार्ग में मनुष्य को कायाशुद्धि कर अपनी कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करना होता था। धीरे-धीरे गुरु के उपदेश के अनुसार

साधना करते हुए वह अपने शरीर में ही परमज्योति या ब्रह्मण्ड-पुरुष का साक्षात्कार करता। तांत्रिकों - विशेषकर शाक्तों ने नारी को साधन बनाया था, गोरखनाथ ने नारी के स्थान पर कुण्डलिनी जागृत करने पर बल देकर पतित और भ्रष्ट होते समाज में नैतिक आदर्शों की स्थापना की क्योंकि ब्रह्मचर्य के बिना कोई भी व्यक्ति इस मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता था।

8 वीं - 9वीं शती में मेवाड़ के बाप्पा रावल, आबू के परमार और जैसलमेर के भाटियों ने इस सम्प्रदाय के आचार्यों को गुरु मानकर इस पंथ का स्वागत किया और 'रावत ' उपाधि धारण की - नाथ संप्रदाय को राज्याश्रय मिलने लगा । राजस्थान में पाबूजी, हरबूजी, गोगाजी, मेहा, मांगलिया के व्यक्तित्व में नाथयोगियों के स्वरूप और चमत्कारों की लोकप्रियता के कारण ही उन्हें लोकदेवता की मान्यता मिली ।

एक योगी के रूप में सिद्धि पाने के लिये व्यक्ति को योग्य गुरु का मार्गदर्शन तो आवश्यक था ही पर उसे संयम रखते हुए ब्रह्मचर्य रखना पड़ता, इन्द्रियों को वश में रखना था और नारी प्रसंग की तो कभी वह कल्पना ही नहीं कर सकता था। उसे चार प्रकार की कठिन परीक्षाओं से गुजरना पढ़ता। परन्तु मोह और माया के पाश में अटके हुए मनुष्य को इस मार्ग पर चलना बहुत कठिन था। इसलिए धीरे - धीरे नाथ-पथ की योगसाधना दुष्कर सिद्ध हुई। बाह्याडम्बर रखने वाले कान फड़ाने वाले और सेली-सिंगी धारण करने वाले बहुत लोग घूमने लगे। जनता की स्थिति वैसी ही हो गयी जैसी नाथ-सम्प्रदाय के प्रचलन से पूर्व थी।

इस योग मार्ग को भिक्त की ओर मोड़ने का कार्य राजस्थान में रामदेव पीर और रावत मल्लीनाथ की भिक्तमती पत्नी राणी रूपांदे ने किया। नाथों की गुरु- भिक्त को निराकार-निर्गुण ईश्वर भिक्त तक रूपांदे ले गयी - सत्संग, जागरण और नाम - स्मरण के मार्ग से।

## 33.05 रामानन्द की भक्ति - परम्परा

वैष्णव शाक्त आदि पौराणिक सम्प्रदायों से अंकुरित सगुण और निर्गुण भिक्त को व्यापक रूप से लोकप्रिय बनाने का कार्य रामानन्द ने किया, इसीलिये उत्तर भारत में भिक्त का सूत्रपात करने का श्रेय रामानन्द को दिया जाता है। वैचारिक दृष्टि से निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार कर व्यवहार में वे मर्यादा पुरुषोत्तम राम के उपासक रहे। ईश्वर और जीव को वे एक ही मानते थे और समस्त जीवों में ईश्वर को देखते थे। नाथ-परम्परा के योगदान के रूप में सहज, शून्य, योग -माया, सुरित, नाद, लय आदि परिकल्पनाओं की नैतिक व्याख्या रामानन्द और उनके शिष्यों ने प्रस्तुत की। राजस्थान में राम की दानों ही रूपों में प्रचलित भिक्त की परम्पराओं के मूल में रामानन्द और उनके शिष्य, कबीर, नानक, दादू का महत्वपूर्ण योगदान है। वास्तव में उत्तर भारत में रामानन्द ही भिक्त को लाये।

## 33.06 राजस्थान के सन्त

: -

सामान्यतः ईश्वर के साकार रूप की पूजा करने वाले और उसकी भिक्त में तल्लीन होने वाले व्यक्ति को भक्त कहा जाता है और ईश्वर के निराकार रूप या निर्गुण ब्रहम की उपासना करने वाले को या भिक्त करने वाले को सन्त कहा जाता है । सन्त शब्द को पालि भाषा के शान्त से या सत् से भी व्युत्पन्न माना गया है । वैसे राजस्थान के लोकदेवताओं एवं सन्तों का परिचय हम अलग इकाई में दे चुके हैं फिर भी यहां उनका संक्षिप्त परिचय उनकी वाणियों एवं साहित्य के संदर्भ में दे रहे हैं

#### 1- रुपांदे

पश्चिम राजस्थान में राठौड़ों की सत्ता के संस्थापक रावल मल्लीनाथ की पत्नी राणी रूपांदे ने कबीर से पूर्व नाथ परम्परा से हटते हुए भिक्त का प्रचार किया । निर्गुण भिक्त की ओर सत्संग और भजनों के जिरए उसने समाज के दिलत वर्गों को भिक्त का मार्ग दिखाया । रूपांदे की वाणी और पद मौखिक परम्परा में दिलत समाज में आज भी सुरक्षित है । रूपांदे रामदेव जी के समकालीन ही हैं । अनुमानतः इनका समय 1350 से 1400 ई. है । रूपांदे और मल्लीनाथ से संबंधित रचनाओं में रहस्यवाद भी है और समाज में नैतिक आदर्श की स्थापना भी ।

#### 2- पीपा

1425 ई. में जन्मे पीपा गागरोन के शासक थे। ऐसी मान्यता है कि स्वयं रामानन्द ने गागरोण आकर इन्हें दीक्षा दी थी। निर्गुणी परम्परा के सन्त पीपा का साहित्य, बाणी, साखी, पद और कथा के रूप में राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान और भारतीय विद्या मंदिर, बीकानेर में सुरक्षित हैं। इनकी कुछ वाणियाँ प्रकाशित भी हुई हैं।

#### 3- जाम्भो जी-

सन्त जाम्भोजी का जन्म पीपासर (नागौर) में ई. 1451 में लोहट और हांसा बाई के घर में हुआ । नोखा के पास समरथल में जाम्भोजी ने साधना की । 1526 ई. में नोखा के पास ही तालवा ग्राम में इन्होंने समाधि ली, जिसे मुकाम कहा जाता है । जाम्भोजी की बाणी, जम्भगीता और स्वामी ब्रह्मानन्द कृत जम्भदेवचरित्रभानु इस सम्प्रदाय के ग्रन्थ हैं । इस सम्प्रदाय को विष्णु की उपासना के कारण अथवा बीस और नौ मिलकर 29 नियमों के पालन से इस सम्प्रदाय का शासन होता है, इसलिये इसे विश्नोई कहा जाता है ।

#### 4- जसनाथ

बीकानेर के पास कतिरयासर में 1482 ई. में जसनाथ जी का जन्म हु आ । उनका पालन पोषण हम्मीर जाट और उसकी पत्नी रुपांदे द्वारा किया गया । 1506 ई. में उन्होंने कतिरयासर में ही जीवित समाधि ली । सिद्ध रामनाथ कृत यशोनाथ पुराण तथा बीकानेर के पास पांचला बाड़ी संग्रह में सुरक्षित जसनाथ पुराण जसनाथी सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रन्थ हैं।

#### 5- हरिदास निरंजनी

डीडवाना के निकट पड़ोस के निवासी हरिदास का जन्म 1455 ई. में हुआ । कहा जाता है कि साधु बनने पर इन्हें 1513 ई. में ज्ञान-प्राप्ति हुई । 1543 में इन्होंने समाधि ली । डीडवाना के निकट गाढ़ा नामक ग्राम इस पंथ का मुख्य स्थान है । हरिदास जी के कुल 52 शिष्य हुए, जिनमें सेवादास, अमरपुरुष और जन तुरसी प्रमुख हैं । मंत्रराज प्रकाश और हरिदास जी तथा उनके शिष्यों की बाणी इस सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रन्थ हैं ।

#### 6- लालदास

मेवात प्रदेश के धोली दूब नामक स्थान पर 1540 ई. में लालदास का जन्म हु आ । चांदमल और समदा के पुत्र लालदास को अलवर के पास तिजारा नामक स्थान पर फकीर गदन चिश्ती ने दीक्षा दी । लालदास ने बांधोली, टोडी, नाहरवाली, रसगण तथा बाद में नगला में चालीस वर्ष तक साधना की । 1648 ई. में शेरपुर में लालदास ने समाधि ली । लालदास के नाम से प्रसिद्ध हु ए इस लालदासी सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं कि यह पुरुषार्थ प्रधान सम्प्रदाय है तथा गृहस्थ रहते हु ए किस

प्रकार रहते हु ए किस प्रकार ईश्वर की साधना की जाती है इसकी शिक्षा इसमें दी जाती है। स्वयं लालदास विवाहित थे तथा उनके दो पुत्र व एक पुत्री थी। लालदास की वाणी, चेतावनी, कथा अनेक पदों का संग्रह इस सम्प्रदाय का प्रमुख साहित्य है।

### 7- दादूदयाल

लालदास की तरह की गृहस्थ सन्त दाद्दयाल का जन्म अहमदाबाद में 1544 ई. में हुआ। ये जाति से मुसलमान, मोची या धुनिया थे, परन्तु इनका लालन-पालन ब्राह्मण लोदीराम ने किया था। ब्रह्मानन्द ने दादू को दीक्षा दी। परबतसर के पास करड़ाला में और बाद में साँभर में दादू ने साधना की। फ्लेरा के पास नरायणा में 1603 ई. में दादूजी ने समाधि ली।

कबीर परम्परा के शिष्य दादूदयाल की शिष्य परम्परा को पांच प्रकार से विभक्त किया गया है - 1. खालसा, 2. विरक्त, 3. उत्तरादे, 4. खाकी, रख 5. सुन्दरदास के द्वारा चलाया गया नागा । दादू की शिष्य परम्परा में कुल 152 शिष्य हैं, जिनमें से 52 विरक्त हुए, इसलिए उनकी परम्परा नहीं है । अन्य शिष्यों की गद्दियां यथावत् हैं । उनके शिष्यों में रज्जब, सुन्दरदास, गरीबदास, बखना बहुत प्रसिद्ध हुए ।

इस सम्प्रदाय के साहित्य में दादू की वाणी, सुन्दरदास की वाणी, राघवदास और नाभादास कृत भक्तमाल, रज्जब साहब की वाणी, दादू का जीवन चरित, दादू जनम लीला, परची, दादू के सबद और दादूदयाल चरित्र चन्द्रिका प्रमुख ग्रन्थ हैं।

#### 8- चरणदास

मेवात में डेहरा नामक स्थान पर जन्मे रणजीत ऊर्फ चरणदास ने सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार से भिक्ति का प्रचार किया । इनके गुरु का नाम शुकदेव मुनि हैं । आजीवन ब्रहमचारी रहकर इन्होंने दिल्ली में साधना की और दिल्ली में ही 1782 ई. में समाधि ली । इनके भी प्रमुख 52 शिष्य हैं । चरणदासी सम्प्रदाय के साहित्य में शुक सम्प्रदाय सिद्धान्त चिन्द्रका, गुरु भिक्त प्रकाश, चरणदास का जीवन चरित तथा चरणदास कृत धर्म जहाज, अष्टांग योग, भिक्त पदारथ, ब्रहमज्ञान सागर तथा मन विरकत करण आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं ।

### 9- रामस्नेही सन्त

### (क) आचार्य जयमलदास

रामानन्द की शिष्य परम्परा में माधोदास मैदानी की परम्परा से संबद्ध जयमलदास राम की निर्गुण भक्ति के प्रचारकों में आद्य आचार्य माने जाते हैं । बीकानेर के पास सिंहथल खेड़ापा में इनकी प्रमुख गद्दी है ।

### (ख) दरियाव -

जैतारण में 1678 ई. में जन्मे दिरयाव ने निर्गुण राम की भिक्त का प्रचार किया । ये जाति से पठान धुनिया थे । इनके पिता का नाम मानाशा तथा माता का नाम गीगा था । ई. 1712 में इन्हें प्रेमदास नामक महात्मा से दीक्षा मिली । कहा जाता है कि दिरयाव की वाणी में 10, 000 साखियाँ व पद थे; परन्तु उन्होंने उसे पानी में बहा दिया । पश्चिम राजस्थान में दिरयाव की बहुत बड़ी शिष्य परम्परा है । किसनदास, सुखदास, तोरण दास, नानकदास, चतुर्दास, हरखाराम टेमदास तथा मंखाराम इनके अत्यन्त प्रसिद्ध शिष्य हैं। मेहता के पास रेण में इनकी गद्दी हैं ।

#### (ग) रामचरण -

जयपुर के निकट सोडा गांव में बखतराम और देऊ के घर में जन्मे रामचरण को कृपाराम ने दीक्षा दी । रामानंद की परम्परा में कृष्णदास पयोहारी (गलता) की परम्परा में कृपाराम जी आते हैं । 1751 ई. में दीक्षा प्राप्त करने के रामचरण की साधना शुरु हुई । इन्होंने भीलवाड़ा के पास शाहपुरा में 1798 ई. में समाधि ली ।

राम की निर्गुण उपासना का प्रचार करने वाले इस सम्प्रदाय को रामस्नेही सम्प्रदाय कहा जाता है ।

रामचरण की अणभै वाणी दरियाव के शिष्यों की वाणियां तथा रामस्नेही धर्मपकाश आदि ग्रन्थ इस सम्प्रदाय का प्रमुख

साहित्य है।

# 33.07 सन्त साहित्य का प्रतिपाद्य

विभिन्न सम्प्रदायों के इन संतों ने और उनके शिष्य -प्रशिष्यों ने अपनी वाणियों में न केवल उपासना का ही उपदेश किया है, परन्तु मनुष्य का जीवन किस प्रकार स्वावलम्बी और सिहष्णु रहने से समाज को शान्तिप्रिय बना सकता है और उसके लिए किन नैतिक आदर्शों का पालन करना चाहिये, कैसे विभिन्न सम्प्रदायों और पन्थों में समन्वय रखना चाहिए और मानवीय मूल्यों की रक्षा करते हुए कैसे विश्वबन्धुत्व को अपनाया जाना चाहिए, यही उनकी वाणियों का सार है।

कैसे सत्संगति मनुष्य को सांसारिकता से विरक्त करती है, ईश्वर और जीव एक कैसे हैं, नाम-स्मरण का क्या महत्व है और इन मार्गों पर चलते हुए गुरु की कितनी महत्ता है, इस तरह के उपदेशों से वाणियाँ भरी पड़ी हैं। संत-साहित्य के इस प्रकार के प्रतिपाद्य का वर्णन आपको निश्चय ही रोचक लगेगा।

## 33.07.1 गुरु महिमा

चूंकि निर्गुण उपासना की परम्परा नाथ-सम्प्रदाय की परवर्ती है इसलिए नाथों की दृष्टि में गुरु के असीम महत्व ने संतों को भी प्रभावित किया है । नानक ने तो -

गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय । बलिहारी गुरु आपने, गोबिन्द दियो बताय ।

यह कहकर गुरु को गोबिन्द से भी श्रेष्ठ बताया है। सुन्दरदास ने गुरु के बिना ज्ञान, ध्यान, प्रेम, शील, संतोष किसी के अस्तित्व को ही नकार दिया है। गुरु के बिना भ्रम का निवारण करने वाला कोई नहीं है-

गुरु बिन ज्ञान नहीं, गुरु बिन ध्यान नहीं । गुरु बिन आत्म विचार न लहतु हैं । । गुरु बिन प्रेम नहीं, गुरु बिन नेम नहीं । गुरु बिन सीलहु सन्तोष न गहत् है । ।

नाथों की परम्परा में जिसे गुरु की कृपा प्राप्त हो गई है, उसे सगुरा और जिसे कृपा प्राप्त नहीं हुई है, उसे निगुरा कहा है। चरणदास की सुविख्यात शिष्या सहजोबाई ने तो यहां तक कहा कि वह हिर को छोड़ सकती है पर गुरु को नहीं। राजस्थान में भिक्त का सूत्रपात करने वाली रूपांदे, अपने गुरु के लिये युगों तक प्रतीक्षा करती है। इसीलिए रामस्नेहीसम्प्रदाय में गुरु को केवल ईश्वर ही नहीं माना जाता, सद्गुरु की वाणी को वेद की प्रतिष्ठा दी जाती है, क्योंकि दिरया के शब्दों में सद्गुरु ही मुक्ति का दाता है, उसकी कृपा से ही सारे जंजाल मिट जाते हैं।

### 33.07.2 ईश्वर और जीव का अभेद

प्रायः सभी सन्तों पर शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त का गहरा प्रभाव पड़ा है। सभी ब्रहम और जीव की सतानत एकता में विश्वास करते हैं और ये मानते हैं कि ईश्वर एक ही है और वह अनेक रूपों, अनेक जीवों में अभिव्यक्त होता है। यह ईश्वर ब्रहम था चैतन्य, जिसे सन्तों ने अगम, अगोचर, अकल्प, अरूप और निराकार कहा है वह और कहीं नहीं, अपितु मनुष्य के हृदय में ही निवास करता है। रुपांदे इस चैतन्यमय ब्रहमतत्व को कारीगर कहकर सारी सृष्टि को उसका आवश्य जनक 'कमठाणा ' कहती है।

चूंकि रुपांदे नाथ परम्परा से संबद्ध है इसलिए मनुष्य शरीर की कल्पना वह एक नगरी से करती है और ईश्वर को इस नगरी का राजा कहती है ।

दाद्दयाल जी ने इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा है कि भेद बुद्धि को हटाइये और पूर्ण ब्रह्म का विचार कीजिए। परम्पराएँ वही सब घटों में हैं। लालदास भी कहते हैं कि भई! ऐसा कोई घट नहीं है, जिसमें सांई नहीं है और जिस घट में एवं वह प्रकट हो जाये उसकी बलिहारी है।

"घट-घट मेरा साईयां, सूना घट ना कोय ।

वा घट की, जा घट परगट होय ।।"

सकल घटों में रमते राम को पाना ही सन्त का लक्ष्य है। नाथ भी मनुष्य शरीर में ही ब्रहम साक्षात्कार की बात करते हैं। परन्तु कुण्डलिनी को जागृत कर और चक्रों का भेदन करते हु ये ज्योति का साक्षात्कार करना ज्ञान मार्ग की प्रक्रिया है। सन्त और उनके अनुयायियों का अपना कुछ भी नहीं रहता, वे अपने आराध्य के प्रति भक्तिभाव से पूर्णतः समर्पित हो जाते हैं और इसीलिये सन्त साहित्य में ईश्वर के लिये प्रयुक्त किये जाने वाले गोविन्द, श्याम या राम के स्वरूप को सन्तों के आराध्य निराकार, निर्गुण ब्रहमम के रूप में ही समझना चाहिये। क्योंकि उनके लिये निराकार ब्रहम का कोई साकार रूप हो नहीं सकता।

#### 33.07.3 सत्संग

सत्संग या सत्संगित का सन्तों ने दो अर्थों में प्रयोग किया हैं। एक का अर्थ है सज्जन पुरुषों की संगित, दूसरा अर्थ है भिक्तभाव भरा संकीर्तन या जागरण जिसमें सम्प्रदाय के अनुयायी अपने गुरुओं की वाणी का या पदों का या भजनों का साम्हिक गान करते हैं। पूर्व में जिन 'सगुरा ' और 'निगुरा ' शब्दों का संदर्भ आया है, उसमें सग्रों की संगित के लिए ही सन्तों ने कामना की है।

विश्नोई सम्प्रदाय के जो 29 नियम हैं, उनमें तंबाक्, भांग, मद्य का सेवन करने वालों की संगति के लिये स्पष्ट रूप से मना किया गया हैं। रुपांदे कहती हैं कि सुगरे आदिमियों से ही स्नेह करो क्योंकि सुगरा ही भक्ति मार्ग पर चल सकता है।

रूपांदे कहती है कि सबद के पारखी साधुओं की संगत करो और मेरे साथ जागरण में चलो । वहीं गुरु प्रकट होंगे । आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक-तीनों तापों का नाश वहीं होगा । जो इसे समझते नहीं, उन्हें ताकीद देती है, " अरे भोले आदिमयो! नुगरे का संग मत करो, उससे भजन में खलल पड़ जाता है । संत चरणदास जी ने अपने ग्रंथ भिनत-पदार्थ में कहा है कि एक हजार बरस तक तपस्या करो और एक घड़ी सत्संग करो, दोनों का पुण्य बराबर है । जबिक रामचरण यह कहते नहीं थकते हैं कि जो सुख सत्संग में है वह किसी में नहीं, इसिलए तुम आठों याम सत्संग करते रहो ।

#### 33.07.4 नाम महिमा -

ईश्वर की पूजा के जो आठ प्रकार बताये गये हैं उनमें नाम स्मरण या नाम संकीर्तन का बहु त बड़ा महत्व है । सन्तों ने यद्यपि नाम स्मरण को ईश्वर प्राप्ति का एक अमोध साधन माना है, वह स्वयं अपने आप में साध्य बन जाता है। इसीलिए सुन्दरदास कहते हैं कि बैठते -उठते, खाते-पीते, लेते-देते, सोते-जागते राम का नाम लीजिए ।

यह राम नाम या हरिनाम की रूपांदे के शब्दों में सभी वेदनाओं का अन्त करने वाला है, सभी पापों का नाश करने वाला है और भवसागर को तिराने वाला है। दिरया साहब कहते हैं कि सभी शास्त्रों का और सभी ग्रन्थों का एक ही अर्थ है, रात और दिन, सोते और जागते, राम का स्मरण कर लीजिये-

सकल ग्रंथ का अर्थ है, सकल बात की बात ।

दरिया स्मिरन राम का, कर लीजे दिन रात । ।

नाम-स्मरण की इस महत्ता से ही प्राय : सभी सन्तों की वाणी में नाम-स्मरण के लिये सुमिरन के अंग का समावेश किया गया है।

कबीर के अनुगामी दादू ने भी कहा कि अल्ला का एक नाम पढ़ने से व्यक्ति विद्वान और सभी शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है । शरीर रूपी पिंजरे में, मन रूपी सुए (तोते) के लिये यही एक मार्ग है । यह नाम-स्मरण बहु त जोस्जोर से करने की जरूरत नहीं है । मन में ही वह धुन लग जानी चाहिये, तभी आप उस निराकार का सामीप्य प्राप्त कर सकते हैं।

हरिदास निरंजनी ने कहा है कि अलख निरंजन को अपने उर में बसाइये और राम से अभेद की स्थिति बनाइये क्योंकि राम नाम ऐसा मोटा रत्न है जिसकी कीमत इस संसार में कोई नहीं आक सकता।

#### 33.07.5 सहजावस्था-

नाथों की सहज अथवा सहज शून्य की अवस्था का प्रयोग सन्तों ने परमतत्व की सिद्धि की अवस्था के लिये किया है। इस सिद्धि का मार्ग नाम-मिहमा से प्रशस्त होता है परन्तु इसके लिये पहले उसे स्थितप्रज्ञ की अवस्था प्राप्त करनी होती है। संसार के सुख और दुःख में सुख या दुःख न मानने वाला स्थितप्रज्ञ है। रूपांदे ने इसे ही जीवन्तमुक्ति कहा है-

दुख ने दुख समझे नहीं, सुख सूं हरख न होय । रूपा कहे संसय नहीं, जीवन्तम्क्ति जोय ।

इस मुक्ति की अवस्था में जीव और ब्रह्म एक होते हैं । इसी को दादू ने 'सहज की डोरी ' से प्राप्त करने का उपदेश किया है । इस प्रेम और भक्ति के कारण ही निश्चल समाधि की स्थिति आती है तब मनुष्य सद्गुरु के प्रसाद से रामरस का पान करता है -

प्रेम भगति जब ऊपजे, निहचल सहज समाधि । दादू पीबे रामरस, सतग्रु के परसादि । ।

#### 33.07.6 योग का प्रभाव

अभी जिस सहज या सहज शून्य की चर्चा की है, उस तरह सन्त साहित्य में नाथ परम्परा के कई अन्य संस्कार हमें दिखाई देते हैं । कबीर ने जहां ज्ञान योग को महत्व दिया है वहीं दादू ने लय योग को महत्व दिया है । सन्तों ने अपने उपदेशों में सुषुम्ना, शून्यमंडल, त्रिकुटी, सुरित, और अनहद नाद आदि का अनेकविध दर्शन कराया है । परन्तु दादू ने नाथ योगियों के बाह्य स्वरूप का विरोध किया है । और यह कहा है कि मन का जोगी होना जरूरी है । अर्थात् वे मौन अन्तर्साधना के पक्षपाती हैं ।

रामचरण जी ने अपनी रचना 'शब्दप्रकाश ' में नामस्मरण की जिस साधना पद्धित का निरूपण किया है, उसके अन्तर्गत केवल नाम स्मरण से ही किस तरह से नाड़ियों को जागृत करके चक्रों का भेदन करते हुए सुधान्नाव का अनुभव किया जा सकता है, यह बताया है । इसके अनुसार रामस्नेहियों की साधना में शब्द की झंकार नाभि कमल से गुंजायमान होती है, जिससे रोम-रोम पुलिकत होता है । साधक को अद्भुत ज्योति का दर्शन होता है । सगुण और निर्गुण दोनों ही प्रकार की भक्ति के समर्थक चरणदास जी ने पांचोपनिषद् नामक कृति के अनुवाद में भक्ति, योग, ज्ञान और समर्पण के समवाय का निरूपण बताया है ।

#### 33.07.7 रहस्यवादिता

'योग ' के इस प्रकार के प्रभाव के कारण ही संत वाणी को पढ़ते समय कभी ऐसा लगता है कि गूढ़ रहस्यों का वह खजाना है । सन्तों ने एक ओर मनुष्य शरीर को निरर्थक और पशुवत् बताया है तो दूसरी ओर ईश प्राप्ति के लिये उसे सार्थक भी बता दिया है । यही नहीं मनुष्य शरीर ही भगवान की कृपा से प्राप्त होता है और इस शरीर का मूल लक्ष्य भी भगवत् भजन ही है ।

दादू ने, परमतत्व की साक्षात्कार की साधना को वस्त्र बुनने की क्रिया के रूप में निरूपित किया है। तत्व के तेल और प्रेम की बाती से दीपक को प्रज्जवित करने से ही अंधकार का अज्ञान मिटता है। तब प्रकाश में प्राणों को ज्ञान की कंघी से निकालकर नाम रूपी नली से अनुरंजित सूत के बुनने का कार्य होता है

प्रेम प्राण लगाइ धागे, तल तेल निज दीया । एकमना इस आरंभ लागा, ज्ञान राछ भर लीया । । नाम नली भिर बुणकर लागा, अंतरगति रंग राता । ताने बाणी जीव जुलाहा, परम तत्व सौं माता । । ऐसे वस्त्र का जब निर्माण होता है, तब निरंजनी सम्प्रदाय के आचार्य कहते हैं कि जहां देखों वहां राम ही राम है । अनेक रंग हैं और बहु रंगीय हैं लेकिन वह किसी से अलग- थलग नहीं दिखाई देता । जैसे जल की तरंग जल से अलग नहीं होती वैसे ही वह हमसे अलग नहीं रहता है -

जित देखूं तित राम ही, बहोरंगी बहोरंग । काहू सो न्यारो नहीं, ज्यूं जल मांहि तरंग । ।

संतों के द्वारा स्वीकार किए गए योगियों के रहस्यवाद का जैसा निरूपण मालैजी की महिमा में है वैसा किसी में नहीं है । रूपांदे के पित पीर रावल मल्लीनाथ के संदेह स्वर्ग गमन की चर्चा करने वाली यह रचना बिलाड़ा जैतारण क्षेत्र में आज भी गाई जाती है । मल्लीनाथ रूपांदे से कहते हैं कि बारहवें महीने में संदेह ' 'साहेब " से मिलेंगे । फिर मालजी घोड़े पर बैठकर स्वर्ग के लिये प्रस्थान करते हैं ।

मालजी के जाने के बाद रुपांदे भी धारू मेघवाल को कहती है कि अपने बैलों की जोड़ी लाओ और गाड़ी में बांध दो ताकि मैं मेरे धनी के पास जाऊंगी। स्वर्ग जाती रुपांदे की गाड़ी का वर्णन देखिये।

धम धम पहिया बैल रा बाजो । बाज ताल करे रिमझोल । सत री बेल गेब सू हाली जणी सरगां चढ़ी लूमती लोल । ।

राजा जनक भी सदेह स्वर्ग गये थे परन्तु मल्लीनाथ रुपांदे की सदेह स्वर्ग -गमन की इस कथा के अन्तर्गत योग - साधना में कुण्डलिनी को जागृत करके सहस्रार चक्रों का भेदन करते हुये मस्तिष्क में दिव्यज्योति के दर्शन करने की जो प्रक्रिया है उस रहस्यवाद को इस रूपक में बांधा गया है । योगी की वह सिद्ध अवस्था सदेह स्वर्ग गमन के समकक्ष ही मानी गई है । इसीलिये एक अन्य गीत में मल्लीनाथ और रुपांदे के उस अचल ज्योति के साथ परमज्योतिर्मय होने की बात कही गई है-

इण कळू बिचालै माल रूपा अचल । जोत सह देव होवे परस जाय । ।

#### 33.07.8 बाह्याडम्बर का विरोध -

संसार की मोहमाया से कोसों दूर रहकर संसार की क्षणभंगुरता का पल -पल उपदेश करने वाले सन्तों ने जैसा ऊपर कहा है, अन्तर्मुखी साधना पर बल दिया है और इसीलिये मूर्तिपूजा, सन्यासियों के वेश या पुण्य कमाने के लिए तीर्थों का भ्रमण या पवित्र नदियों में स्नान करके पुण्य कमाने जैसी प्रवृत्तियों की उन्होंने निन्दा की है। जैसे दादू ने कहा है - " अरे भाई! ईश्वर तो तुम्हारे घर में हैं। तुम काहे को मथुरा व काशी दौड़ते हो -

दादू कोई दौड़े द्वारिका, कोई काशी जाही । कोहि मथुरा को चले, साहिब घट ही माहीं । ।

इसी बात को समझाते हुए रामस्नेही सम्प्रदाय के दिरया साहब ने कहा है- ' 'क्यों मंदिर फिरते हो? तुम्हारा यह शरीर ही मंदिर है और इसमें बैठी हुई आत्मा निरंजन देव हैं । ज्ञान की पांच बातियाँ जलाओ और रात दिन उसका ध्यान करो और जो इसको नहीं जानता वह व्यक्ति तीर्थों में नहाया करता है । "

सभी सन्तों ने इसीलिये मूर्तिपूजा का विरोध किया । सन्त रामदास जी कहते हैं कि धातु व लकड़ी की मूर्ति हाथ का सन्त से बना लेते हैं और यह दुनिया अंधी हैं जो उसकी पूजा करती (रहती) है -

इसीलिए सन्त रुपांदे भी उन लोगों की निन्दा करती हैं जो ईश्वर और जीव का अभेद नहीं जानते और स्वार्थी हैं

वह कहती है कि मैं समझाऊं तो किसे समझाऊं? प्रसाद के लोभ से जागरण में आने वाले लोगों के लिये वह कहती

हैं कि ये लोग लम्बी-लम्बी जोत लगाते हैं किन्तु कैसी विचित्र बात है कि बाहर उजाला और अन्दर अंधेरा है । एक

दूसरे से होड करते हु ऐ, चिल्लाते- गाते उनका भ्रम नही टूटता, व्यर्थ में ही रात खो देते हैं-अ तो होड़ा-होड़ सूं गावे हो, बाजे तंदूर मंजीरा गहरा रे ।

या रो मायलो भ्रम नहीं जावे हो, ए तो विरथ रात गमावे हो ।

#### 33.07.9 समन्वय दृष्टि -

संसार के विभिन्न जीवों के बीच ही नहीं, अनेक प्रकार के सम्प्रदायों और मत-मतान्तरों के मध्य सन्तों ने एक मार्ग-मध्यम मार्ग ढूंढने का सफल प्रयास किया और इसका कारण संत संस्कृति के विकास के मूल में ही विहित हैं। नाथ-परम्परा ने तो ऐसे समाज का, ऐसी उपासना पद्धित को प्रस्तुत करने का प्रयास किया कि जिसमें हिन्दू-मुसलमान तक में कोई अन्तर नहीं था। दूसरे, भागवत धर्म में उद्भूत सम्प्रदायों की पूर्व चर्चित उपासना-पद्धितयाँ भी समाज के एक विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित होकर रह गयी थी, परन्तु सन्तों का धर्म एक लोकधर्म था, उसमें बिना किसी जात-पांत के, सभी व्यक्तियों के लिये अपनी मुक्ति का मार्ग ढूंढना आसान था और श्रेयस्कर भी। तीसरे, ऐसी समन्वय दिष्ट का एक कारण यह भी था कि दादू दिरया या लालदास जन्म से भले ही मुसलमान हो, उनका पालन-पोषण हिन्दू-परिवारों में हु आ इसलिये उनमें दोनों ही संस्कार पल्लवित हुए।

दाद् ने ग्रन्थ संत सुधासार में लिखा कि हमने सब दूर ढूंढा, दूसरा कोई दिखाई ही नहीं देता, सभी घटों में (शरीरों में) एक ही आत्मा है, चाहे वह घट हिन्दू का हो या मुसलमान का । इससे भी कहीं आगे सोचते हैं हिन्दू हाथ है

तो मुसलमान पग, दोनों भाई हैं, एक घट के दो नयन हैं-

दादू दोनू भाई हाथ पग, दोनों भाई बाना ।

दोनों भाई नेन है, हिन्दू म्सलमान । ।

हिन्दू मुसलमानों की इस शाश्वत एकता की तरह रज्जब अनेक पंथों की साधनाओं का एक ही उद्देश्य बताते हैं ।

कहते हैं कि कोई भी किसी दिशा से आवो, अस्थल तो एक ही है- क्या फरक पड़ता है कि कौन कहां से आ रहा नारायण अर नगर के, रज्जब पंथ अनेक । कोई आवा कहीं दिसि, आगे अस्थल एक । ।

इसीलिये हिन्दू मंदिर जाए तो जाने दो, मुसलमान मस्जिद जाए तो जाने दो, साधु एक अलेख ' अलख ' में ही निरन्तर प्रीति रखता है, उसके लिये क्या मस्जिद और क्या देहरा? उसके लिये राम रहीम दोनों एक हैं । जैसा लालदास ने कहा है-

हिन्दू तुरक है दोउन का, येक ही राम रहीम खुदा जी।

#### 33.07.10 अभेद दृष्टि -

सन्तों ने ईश्वर -जीव या विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों में ही नहीं, सभी जीवों में, ऊँच-नीच, राव-रंक सभी को वे अभेद या एकता की दृष्टि से ही वे देखते हैं। रुपांदे तो कहती है इस साधना के मार्ग पर तो प्रुष और स्त्री में भी कोई भेद नहीं है।

ना को पुरुस नहीं को नारी ना को दाता ना कोई भिखारी। ना को रंग नहीं को राजा लघ् दीरघ झूठ करि जाना।

दर-असल सन्तों ने सभी मत-मतान्तरों और सभी परिस्थितियों में समन्वय की स्थापना की दृष्टि से देखा और सत्य को ईश्वर को सर्वग्राह्य या सर्व-उपास्य की स्थिति में स्वीकार किया। न उन्होंने प्रवृत्ति मार्ग का ही बहिष्कार किया, न केवल निवृत्ति को ही अपनाया। उनकी दृष्टि में ईश्वर -प्राप्ति के लिये किसी ऐकान्तिक मार्ग के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार की धारणा के कारण ही उन्होंने संसार को देखने समभाव या समता दृष्टि को अपनाया है। उच्च- नीच, गरीब-रईस, राजा-रंक, संपन्नता-विपन्नता, समाज की ओर से मिलने वाला आदर-तिरस्कार सबका उन्होंने तटस्थ- भाव से स्वागत किया और प्रेम- भिक्त का दिव्य संदेश जन-तक पहुँ चाया क्योंकि उनका मूल सिद्धान्त 'सब घट में एक सांई' था- सभी में रममाण चिदात्मा या सत्यस्वरूप ईश्वर के ही ये विभिन्न रूप थे, उपनिषद् के ब्रहम की तरह जहां एक ईश्वर ही ब्रहम के विविध रूपी होने की बात कही गयी है - 'एको हं बहु स्याम्। "

#### 33.07.11 नैतिक आदर्शों की स्थापना -

सन्तों के केवल मनुष्य की मुक्ति का मार्ग ही नहीं बताया, वरन् समाज में नीतिमत्ता की मान्यता की पुन: स्थापना के लिये जन जागरण का कार्य भी किया ।

रामस्नेही सम्प्रदाय के दरिया साहब ने नारी को जगत की जननी कहा है उन्होंने कहा कि उसे दोष मत दो, उसे अपनी मां-बहन समझो -

"नारी जननी जगत की पाल पोष दे पोस । मूरख राम बिसारि कैं ताहि लगावै दोस । । नारी आवै प्रीतिकर सतगुरु परसे आण । जन दरिया उपदेश दे मांय बहन थी जाण । । नारी सम्मान के अलावा सन्तों ने व्यक्तियों के सदाचरण पर बल दिया एवं दुर्गुणों का त्याग करने के लिए उन्हें प्रेरित किया । जाम्भोजी ने चिरत्र पर बल देते हुए चोरी, झूठ, मक्कारी, निन्दा, हिंसादि भावनाओं का तथा अफीम, तम्बाकू, भांग, गांजा आदि के उपयोग को वर्जित किया । स्वयं जसनाथ जी ने सन्तसेवा तथा अतिथियों की सेवा को एवं क्षमा तथा सहिष्णुता को अपनाने के लिये लोगों को प्रेरित किया ।

लालदास इन्हीं भावों को यों अभिव्यक्त करते हैं -

"लालजी शील गया तो क्या रहा, सत गया सह हार ।

भिक्त खेत कैसे बचे, यूट गयी सब बार ।।

चरणदास जी ने दया, नम्रता, क्षमा आदि गुणों के साथ वैर- भाव न रखने, मधुर वचन कहने तथा जीव को रक्षा करने की बात इस प्रकार कही है

"मन सों रहु निवेंरता, मुख सूं मीठा बोल । तन सूं रक्षा जीव की, चरणदास कहि खोल । ।

#### 33.07.12 लोकजीवन का परिष्कार -

लोकजीवन में ट्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध कर नैतिकता के साथ-साथ सन्तों ने आत्मशुद्धि तथा स्वस्थ समाज रचना के लिये प्रयास किया । स्वयं लालदास ने भिक्षावृत्ति का विरोध किया और कहा कि खुद काम करके कमाओ, जो ट्यक्ति स्वावलम्बन पर खड़ा नहीं है, वह लंगड़ाता है । साधु को भी भीख नहीं मांगनी चाहिये -

लालजी साधु ऐसा चाहिये, धन कमा कर खाये । हृदय हर की चाकरी, परघर कभी न जाये । ।

रुपांदे ने नारी स्वतन्त्रता की पुरजोर शब्दों में मांग की, वे कहती हैं- नारी को पर्दे में रहने की क्या आवश्यकता, जिसे संसार का भय है- वह अवश्य रहे पर्दे में । सिंह की बच्ची खुले जंगल में घूमती है । उसे किसका भय?

"पड़दे में वे रैवसी, जिहि जगरौ डर ।

सिंह सुता चवड़ी फिरे, काल न खावै कोय । ।

सन्तों ने आर्थिक शोषण का भी विरोध किया है और जागीरदारों के द्वारा निर्धन और किसानों पर ढाये जा रहे जुल्मों का विरोध किया । लालदास जी ने कहा - "कमाना और खाना आपका हक है । उस हक के लिये आप लड़िये ।

"लालजी हक खाईये, हक पीजिये

हक की करो फरोह । "

लालदास को शासकों और ठाकुरों का बहु त विरोध सहन करना पड़ा था फिर भी ऐसी परिस्थिति में वे लोगों को ये आश्वासन देते हैं कि ' 'साहब' ' समर्थ हैं - वह सबको देख रहे हैं । आठों पहर और चौसठ घड़ी वे आपको सम्हालने वाले हैं ।

जीवों के प्रति प्रेम और अहिंसा का उपदेश प्रायः सभी सन्तों ने किया है। यहां तक कि वृक्षों की रक्षा के लिये भी विश्नोई सम्प्रदाय के अनुयायियों ने प्राण -त्याग कर अपनी अहिंसा की भावना का ही परिचय दिया है । दादू ने तो चेतावनी दी है कि जो जीव का घात करेगा, वह आत्मघात करेगा । जीव की हत्या करने वाला नरक में चला जायेगा ।

दादू कोई जीव की करे आत्माघात ।

साचा कहूं संसा नहीं सो प्राणी दोजख जात । ।

जाति-पांति के और धर्म-पंथ के भेद को समाप्त कर सन्तों ने समान व्यवस्था वाली समाज-स्थापना करने का प्रयत्न किया। आर्थिक शोषण के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया। दुर्व्यसन और सामाजिक कुरीतियों की भर्त्सना की और मुक्ति-मार्ग पर चलने से पूर्व सदाचार और सिहण्णुता भरे शुद्ध हृदय की आवश्यकता का प्रतिपादन किया।

# 33.08 इकाई सारांश

#### सन्त साहित्य की प्रासंगिकता

अनेक सम्प्रदायों और आस्थाओं में विभक्त हु ये समाज में जब बहु संख्यक व्यक्तियों को साधना का कोई मार्ग नहीं मिल रहा था तो सन्तों ने ऐकान्तिक प्रवृत्ति मार्ग अर्थात् उपभोग और अर्थवाद तथा ऐकान्तिक निवृत्तिवाद, जिसके अन्तर्गत अकाल संन्यास की प्रथा आती है, इन दोनों को ही छोड़कर एक ऐसे मध्यम मार्ग का उपदेश दिया जिसमें गृहस्थ रहते हु ये भी निवृत्ति मार्ग की साधना की जा सकती थी, इस प्रकार अकाल संन्यास लेने की प्रथा का विरोध करते हु ये उन्होंने गृहस्थों के माध्यम से समाज को सुसंगठित रखने का प्रयत्न किया।

सन्तों का दूसरा महत्त्वपूर्ण अवदान समभाव की दृष्टि का है। उन्होंने जाति और वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया है और समाज के सभी स्तरों के व्यक्तियों में सदाचरण पर बल देते हु ये नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठापना पर बल दिया, क्योंकि सच्चरित्र और सिहष्णु व्यक्ति ही शुद्ध मन से भक्ति के मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सार्थक बना सकता है।

सन्तों का तीसरा अवदान लोक-धर्म की स्थापना का है। वैदिक धर्म या सनातन भागवत धर्म और उनसे निकले सम्प्रदाय अपनी कितपय व्यवस्थाओं के कारण अपना दायरा बढ़ा नहीं सकते थे इसिलये इन सम्प्रदायों की पूजा -परम्पराएं विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित रह गई थीं, जन-सामान्य के लिये उसमें कोई स्थान नहीं था। सन्तों से पूर्व नाथों ने भी लोक -धर्म स्थापना का प्रयास किया था परन्तु योग के किठन अभ्यास के कारण वह लोक-धर्म हो नहीं पाया। सन्तों के द्वारा प्रचितत साधना पदितयाँ, मध्यम मार्गीय होने से सभी स्तरों के व्यक्तियों के लिये सुगम्य थी और इसीलिये सन्तों की ये निर्गुण उपासना परम्पराएं लोक- धर्म का स्वरूप ले सकीं।

सन्तों का चौथा अवदान विश्वबंधुत्व की भावना का जागरण है। सन्तों के केवल स्वयं की सिद्धि का ही प्रयास नहीं किया अपितु जाति और वर्ण से परे काल और देश से परे सभी व्यक्ति और प्राणियों के लिये समान भाव से आस्था और प्रेम रखते हु ये उन्होंने विश्वबंधुत्व का मार्ग प्रशस्त किया। सन्तों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त, आचरण समाज के नैतिक आदर्श, सिहष्णुता आदि की आज कितनी तीव्रता से आवश्यकता है, इस बात पर भी यहां विचार किया जाना आवश्यक है।

अर्थवाद और उपभोगवादी संस्कृति के उत्थान से आत्म-चिन्तन और आत्मपरीक्षण की ओर समाज को उन्मुख करने की आज आवश्यकता है। धन और जाति के आधार पर लड़े जाने वाले चुनावों और सामाजिक समझौतों से समाज की जो हानि हो रही है उससे बचने के लिये सन्तों की समता दृष्टि को अपनाना आवश्यक है। आज समाज में आचरण भी दूषित है, पर्यावरण तो है ही। जिन परिस्थितियों और समय में सन्तों ने इन सिद्धान्तों का व्यवहार में प्रचलन कराया, उनकी आज भी उतनी ही महती आवश्यकता है। इसलिये आज सन्त-साहित्य के केवल अध्ययन की ही आवश्यकता नहीं है, उसे प्रत्यक्ष रूप से व्यवहार में भी लाने की आवश्यकता है अन्यथा भौतिक समृद्धि की इन्द्रधनुषी रंगीन छटाओं में स्वत्व को भूलती जा रही मानवता को अपने देवस्वरूप का आभास कभी नहीं हो सकेगा।

## 33.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

## (अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये : -

- (1) नाथ सम्प्रदाय की राजस्थान के निवासियों के जीवन में किस प्रकार भूमिका रही ।
- (2) ग्रु-महिमा से आप क्या समझते हैं।
- (3) सन्त साहित्य में नारी की प्रतिष्ठा किस प्रकार स्थापित की गयी है।
- (4) सन्त साहित्य में वाणी का क्या महत्व है।

## (ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये।

- (1) राजस्थान की समन्वय एवं सिहष्णु संस्कृति के निर्माण में सन्त साहित्य का क्या योगदान है ।
- (2) सन्त साहित्य में ईश्वर के नाम की महिमा का बखान किस प्रकार किया गया है।
- (3) रामानन्दजी की भक्ति परम्परा का सन्त साहित्य में क्या योगदान है ।
- (4) सत्संग एवं सन्त साहित्य के परस्पर मेल पर टिप्पणी कीजिये।

# इकाई सं. 34 "राजस्थान में ब्रजभाषा एवं साहित्य"

### इकाई संरचना

- 34.01 उद्देश्य
- 34.02 प्रस्तावना
- 34.03 राजस्थान में ब्रज भाषा की प्रारम्भिक स्थिति
- 34.04 हवेलियाँ
- 34.05 मध्यकालीन स्रक्षित धरोहर
- 34.06 संस्थाओं दवारा ब्रज भाषा को संरक्षण एवं प्रोत्साहन
- 34.07 अकादमी के प्रकाशन
- 34.08 इकाई सारांश
- 34.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

## 34.01 उद्देश्य

भाषा एवं साहित्य के इस इकाई समूह में राजस्थान की संस्कृति को समृद्ध करने वाली जो भी शक्तियाँ हैं, उनमें ब्रज भाषा का अपना महत्व है। यही कारण है कि उसके अध्ययन को इस प्रस्तुत इकाई में सम्मिलित किया है। प्रस्तुत अध्ययन के निम्न प्रमुख उद्देश्य हैं: -

- (1) राजस्थान में ब्रज भाषा की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि क्या है ।
- (2) भारतीय साहित्य के भिक्तिकाल एवं रीतिकाल ने ब्रज भाषा को नई परिभाषा एवं आयाम किस प्रकार दिये ।
- (3) आधुनिक साहित्य के निर्माण में भी ब्रज भाषा की भूमिका किस प्रकार रही ।
- (4) साहित्य व संस्कृति को इस भाषा की क्या देन है।
- (5) स्वतंत्रता के पश्चात इस भाषा को संरक्षण एवं प्रोत्साहन देने हेतु क्या उपाय किये गये हैं।

### 34.02 प्रस्तावना

शैरसेनी अपभ्रंश का मूल स्थान ब्रज मंडल माना जाता है। ब्रज क्षेत्र के आभीरों एवं गुर्जरों की यह बोली मूल रूप से मथुरा, आगरा, अलीगढ़ व जोधपुर क्षेत्र में बोली जाती है। ग्रियर्सन के अनुसार दोआबा उससे सटे दिल्ली के दक्षिणी भाग इटावा तक का प्रदेश ब्रज मंडल कहा जाता है। मुख्य केन्द्र मथुरा के चारों ओर है। यमुना के दक्षिण तथा पश्चिम में गुड़गांव, भरतपुर, करोली से ग्वालियर के उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में बोली जाती है। यह शूसेन क्षेत्र ब्रज नाम से प्रसिद्ध है। यह क्षेत्र श्री कृष्ण की जन्म स्थली होने से तथा उनके अवतारी चरित्र और लीलाओं के कारण धार्मिक एवं आध्यात्म का केन्द्र स्थल रहा है। आज भी विश्व भर में इस नाते पवित्र स्थल माना जाता है। जहां ब्रज सतत् प्रवाहमान रही है, आज भी जन सामान्य की बोली है।

ब्रज भाषा शैरसेनी प्राकृत की वंशज बतायी गयी है । अपभ्रंश का तात्पर्य है बिगड़ी हुई गंवारू बोली भाषा । परन्तु ब्रजभाषा के दो रूप हैं । एक साहित्यिक रूप तथा दूसरा जनपदीय रूप । पन्द्रहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक ब्रजभाषा का वर्चस्व रहा है । वह काव्य की तो एक मात्र मान्य भाषा

स्वीकार कर ली गई और गद्य और पद्य दोनों में ही उसका वर्चस्व बना रहा । विपुल साहित्य रचा गया । यूँ भी दैनिक व्यवहार में, राजकाल में तथा दान पत्रों, खरीतों, ऐतिहासिक सन्दर्भों कें पत्र व्यवहार में भी ब्रजभाषा का मध्य देश में बोल-बाला रहा है । वह एक तरह से आम जनता की व्यवहार की भाषा थी तथा इसका विस्तार क्षेत्र दिल्ली से लेकर नर्मदा तक के अइतीस हजार वर्ग मील में बसे एक करोड़ लोगों से अधिक की भाषा रही है । उसने कन्नौजी, बुन्देली आदि बोलियों को काव्य की भाषा प्रदान की है ।

कृष्ण भिक्त काल में और आज भी ब्रजवासी भागवताचार्य एवं रासलीलाओं के काव्य वाचक अपनी मंडिलयों के द्वारा ब्रज भाषा का प्रचार प्रसार सम्पूर्ण देश में कर रहे हैं और ब्रज भाषा का लोकरंजन और रसेस्वरी कथानकों को स्वर लहिरयों के साथ लाखों लाख लोगों को धर्म और अध्यात्मक का पीयूश वर्णन कर रहे हैं । भले ही मुस्लिम आक्रमण तथा उनके शासन -काल में ब्रज भाषा का गद्य लेखन कम हो गया हो और राजकाजी भाषा अरबी फारसी हो गई हो किन्तु काव्य एवं धार्मिक क्षेत्रों में उसका वर्चस्व कायम रहा । यहां तक अनेक मुस्लिम बादशाह तथा विद्वानों ने स्वयं उसे अपनाया और श्रेष्ठ साहित्य से उसका भंडार भरा ।

# 34.03 राजस्थान में ब्रजभाषा की प्रारम्भिक स्थिति :

राजस्थान प्रदेश की भाषा रख साहित्य का अध्ययन वीर गाथा काल से होता चला आ रहा है। इस प्रदेश की भाषाओं के दो रूप बताये गये हैं। एक डिंगल नाम से तथा दूसरा पिंगल नाम से। यहां डिंगल का रूप मरूवाणी में स्थापित है तो पिंगल दो अर्थों में प्रयोग में लाया गया है। एक ब्रजभाषा तथा दूसरा काव्य शास्त्र के नियमों उपनियम या व्याकरणीय रूप से। जैसा सर्वमान्य है भाषा या बोली क्षेत्र विशेष के मानव समूह के जातीय संस्कारों संस्कृतियों की अभिव्यक्ति है और वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने साथ ले जाती है। नये स्थान के सम्पर्क में आई बोली भाषा के शब्दों का आदान प्रदान करती है और बहता भाषा नीर नये-नये रूप धारण करता है; कुछ छोड़ता कुछ ग्रहण करता है।

ब्रज भाषा के सम्बन्ध में यह जान लेना समीचीन होगा कि उसका उद्भव, सृजन तथा विस्तार किसी राजसत्ता का मोहताज नहीं रहा । धार्मिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति स्वत : मुखाय हु ई है । परिस्थितिजन्यसामाजिक भौतिक प्रतिकूलताओं ने मानव के भाव पक्ष को उद्देलित किया और परम लक्ष्य की खोज में आनंदानुभूति के सृजन का माध्यम साहित्य में मिला । धर्म, अध्यात्म और साकारभिक्त को आश्रय मिला ब्रज क्षेत्र में अवतरित कृष्ण अवतार से जिन्हें कालान्तर में आचार्यों में ब्रह्य घोषित कर सामान्य जन का सम्बल बनाया और समृद्ध ब्रज साहित्य का विशेष रूप से भिक्त काव्य का सृजन हु आ ।

अलवर, भरतपुर, करोली तथा धोलपुर और जयपुर संभाग के सम्पूर्ण या कुछ भागों में ब्रज भाषा बोली जाती है। जहां परम्परा से ब्रज साहित्य और संस्कृति का वर्चस्व रहा है, सृजन हु आ है । विपुल मात्रा में इसी क्षेत्र के रचनाकारों ने ब्रज भाषा को परिष्कृत किया है। मथुरा तथा आगरा मंडलों की सांझी संस्कृति और भाषा होने के कारण यह क्षेत्र ब्रजभाषा के सृजन का केन्द्र रहा है। ब्रज भाषा के प्रसार में वल्लाभाचार्य सम्प्रदाय के लोगों का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

किवदंती है कि ब्रज भाषा की प्रेरणा देने वाले स्वयं ठाकुरजी हैं । उल्लेख मिलता है कि एक समय गोस्वामी विद्वल नाथ जी ने अपने चौथे लालजी को शृंगार मंजूषा लाने का आदेश दिया था । उन्होंने संस्कृत में ताम्बूल देने को कहा तो गोकुल नाथ जी समझ न सके । उनको किठनाई हुई तब ठाकुरजी ने प्रकट होकर आदेश दिया कि मुझे ब्रज भाषा अत्यंत प्रिय लगती है । मैं उसे आत्मा से चाहता हूँ । ब्रज भाषा ब्रज मंडल की भाषा है । ब्रज मेरी जन्मभूमि है । ब्रज भाषा मुझे प्राणों से भी ज्यादा प्यारी है । इसे टोको मत और तभी से पुष्टि मार्गीय साहित्य ब्रज भाषा में लिखा जाने लगा । तात्पर्य यह है कि ब्रज मंडल की यह बोली अपभ्रंश के बाद भाषा के रूप में विकसित करने का श्रेय गोकुल नाथ जी को जाता है । पुष्टि मार्गीय देव पूजा अर्चना तथा ठाकुरजी अर्थात् कृष्णजी की प्रतिमाओं अथवा स्वरूपों का संरक्षण तथा अस्ट छाप के किवयों की भाषाई सेवा साधना कीर्तन कथा आदि का श्रेय ब्रह्मकुल सम्प्रदाय की देन है जिसे वे आज भी सुरक्षित रखे हुए हैं । उनकी मातृभाषा होने से वे इसका दैनिक बोलचाल में भी प्रयोग करते हैं ।

ब्रज भाषा का राजस्थान में प्रवेश का मुख्य कारण है ब्रज मंडल पर अन्य संस्कृतियों का आक्रमण । उनके द्वारा इकाई मंदिरों का विध्वंस, मूर्तियों को खंडित करना और सांस्कृतिक धरोहरों को नष्ट करने जैसे कार्यों ने पुष्टि मार्गीय गोस्वामियों को अपनी आस्था एवं ठाकुरजी के विग्रहों को सुरक्षित स्थानों पर ले जाने के लिये विवश किया । उनके आकर्षण का केन्द्र समीप का राजस्थान क्षेत्र ही बचा, जहां विभिन्न राजपूत शासक भी उन्हें संरक्षण देने में हिचकिचाहट नहीं दिखा रहे थे । फिर बल्लभाचार्यजी के प्रकाट्य एवं धर्म प्रचार के कारण राजपूताना के अधिकांश राजा कृष्ण भक्त हो चुके थे तथा उन्होंने उनके विभिन्न स्वरूपों को अपनी रियासतों में सुरक्षित रखने का निश्चय किया था । इसी के फलस्वरूप उनके सातों स्वरूपों को लाकर अलग - अलग क्षेत्रों में स्थित विभिन्न हवेलियों में स्थापित किया और सेवा पूजा सुरक्षित की गयी । जो इस प्रकार है

## 34.04 हवेलियाँ

करोली के राजा ने मदन मोहनजी का स्वरूप पधराया (स्थापित किया या मूर्तियों को प्राण प्रतिष्ठित किया), बूंदी ने मथुरेशजी का स्वरूप पहले पधराया और यही बाद में कोटा द्वारा पधराया गया। जयपुर नरेश ने गोड़पादीय सम्प्रदाय गोविन्द देवजी तथा गोपीनाथ जी के स्वरूप स्थापित किये। मेवाइ नरेश ने श्रीनाथ जी का स्वरूप श्रीनाथ द्वारा में स्थापित किया जो अजब कुंअर बाई के महलों में स्थित है। इसके अतिरिक्त बांके बिहारी का कृन्दावन तथा द्वारकाधीष जी का स्वरूप मथुरा में स्थापित किया गया। ये सभी स्थल धर्म और संस्कृति के केन्द्र आज भी हैं। राजस्थान के शासकों ने न केवल उनको पधराया बल्कि अपनी रियासतों का स्वामित्व उनको प्रदान किया और स्वयं को उनके प्रतिनिधि कार्यवाहक के रूप में प्रतिष्ठित करके राज्य का प्रशासन चलाया। इन हवेलियों की सम्पूर्ण व्यवस्था की गई तथा उनका राजकोष द्वारा प्रबन्ध किया गया। ये सातों केन्द्र अष्ट छाप के ब्रज भाषा कवियों द्वारा रचित कीर्तन एवं भजनों का नित्य गायन करते हैं तथा ग्रन्थों का प्रकारण अध्ययन कराया जाता है। इनके माध्यम से अनेक शिक्षण संस्थाएँ तथा सेवा केन्द्र कार्य कर रहे हैं।

स्वामी वल्लभाचार्य जी की धार्मिक पुनरुत्थान की यह जीवन पद्धित प्रभावी सिद्ध हुई है। उनके 8 पटु शिष्यों ने जो ब्रज भाषा व संस्कृति की सेवा बनाये रखी है, वह अद्वितीय है । अष्ट छाप के किव ये हैं सर्विशिरोमीण 1 सूरदास 2 नन्ददास 3 कुंजनदास 4 कृष्णदास 5 चतुर्भुजदास 0 परमानंद दास 7 गोविन्दस्वामी तथा 8 छीतरस्वामी।

इनकी रचनाएं काव्य जगत की बेजोड़ निधि है । ब्रज भाषा की काव्यशैली, रस, अलंकार, वात्सल्य, छंदविधान की लीलाओं ने नाट्य कला की प्रस्तुति, भागवत कथाओं में मानव निर्माण का निर्देशन और सुखमय जीवन के स्रोतस्वनी बनकर देश विदेशों में किलकाल के कलुष को निष्प्रभावी करने का सतत् प्रयास कर रहे हैं। नित्य वाचन हेतु इनके ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं जो समाज में ब्रज भाषा को जीवन्त किये हुए हैं। वर्तमान में अन्तराष्ट्रीय पृष्टिमार्गी परिषद का केन्द्र कोटा, राजस्थान में तथा मुंबई में हैं। परिषद द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ इस प्रकार है (1) दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता चौरासी वैष्णवों की वार्ता- ये ब्रजभाषा गद्य के मानक स्वरूप माने जाते हैं। - इनके संग्रहकर्ता गोकुलनाथ हैं, (2) शिक्षा पत्रावली 3 कीर्तन साहित्य 4 प्रवचन 5 पत्रिकाएं (वल्लभ चिन्तन, वल्लभ आख्यान माला) 6 श्रीमद् भगवत कथा आदि अन्य संग्रह एवं प्रकाशन है।

# 34.05 मध्यकालीन सुरक्षित धरोहर

हिन्दी भाषा एवं साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का गत हजार वर्षों से क्रमबद्ध अध्ययन किया गया है। इस कालखंड के चार भाग किये गये हैं 1 वीरगाथा काल 2 भिक्तकाल 3 रीतिकाल तथा 4 आधुनिक काल। पिश्चिमी -उत्तरी भारत में वीरगाथा काल की भाषा डिंगल तथा पिंगल है। पिंगल ब्रजभाषा मानी गई तथा इस काल का साहित्य दोनों भाषाओं का मिश्रित रूप में प्राप्त होता है। राजस्थान एवं ब्रजभाषा का मिलाजुला साहित्य विपुल मात्रा में संगृहीत है। जैन धर्म के ग्रन्थों में भी प्राकृत के साथ ब्रजभाषा और मरू वाणी या डिंगल में रचनाएं हुई है। राजस्थान ऐसे साहित्य का भंडार है जिस पर अनेक शोध हो चुके हैं और वह सामग्री अब भी शोध की प्रतीक्षा में है। जिनसे प्रतीत होता है कि राजस्थान के मध्यकालीन सत साहित्य में ब्रजभाषा का बाहु ल्य है और कुछ ग्रन्थ तो शुद्ध ब्रजभाषा के ही हैं। जिनमें स्थानीय बोलियों के 'देशज' शब्द भी प्रयोग में आये हैं। अन्य रासो ग्रन्थ जो राजस्थानी (मरूवाणी) के हैं उनमें भी ब्रजभाषा का प्रयोग हु आ है। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनों में मिलता है। बारह सदी का ' 'पृथ्वीराज रासौ ' ब्रजभाषा का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है, जिसमें ब्रजभाषा के गद्य के दर्शन होते हैं। इसी तरह गोरखवाणी में भी ब्रजभाषा मिलती है। संतों की वाणियाँ ब्रज भाषा के शब्दों से भरी पडी हैं।

भिन्तिकाल तथा रीतिकाल तो कई अथों में ब्रजभाषा काल ही है। जो आज भी अपना ऐतिहासिक स्थान बनाये हु ए हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक काव्य क्षेत्र में ही नहीं सभी विधाओं में ब्रजभाषा का बोलबाला रहा है। इस काल में साहित्य जगत के आचार्य तथा काव्यशास्त्र के अद्वितीय अध्येताओं की एक श्रृंखला पूरे हिन्दी भाषी क्षेत्र में हुई है। जिनकी अमिट रचनाएं साहित्य जगत की धरोहर है। तब ब्रजभाषा काव्यभाषा की पर्याय बन गयी है। राजस्थान में रस प्रसिद्ध कवि बिहारीलाल, जसवन्तसिंह, जानकव, मंडन भट्ट, पदमाकर, सूरित मिश्र, मितराम, सोमनाथ प्रभृति इस भाषा का प्रभृत विकास किया।

जैसा कि लिखा गया है प्रेम एवं श्रृंगारपरक रचनाओं के 'रास ' तथा वीरतापूर्वक काव्यों, 'रासौ ' में ब्रजभाषा का अस्त योगदान है । उन कृतियों में, पृथ्वीराज रासौ, खुमाण रासौ, वीसलदेव रासौ, विजयपाल रासौ प्रमुख है । चन्द वरदाई कृत पृथ्वीराज रासौ शौर्य - श्रृंगार, जय-विजय तथा युद्ध प्रेम का अनूठा संगम है । इसमें प्रचलित सभी छन्दों का प्रयोग किया गया है । दलपित विजय कृत 'खुमाण रासौ ' चित्तौड़ के राजाओं की खलीफाओं की सैना के विरुद्ध संघर्ष की अनूठी काव्य रचना है । नल्लिसंह नाम के किव की 'विजयपाल रासौ ' करौली के यदुवंशी शासकों की विजयों की गाथा है । परपित नाल्ह ने 1343 ई. के लगभग वीसलदेव रासौ की रचना की थी जिसमें अजमेर के चौहान शासक वीसलदेव

व उनकी रानी राजमित की प्रेमगाथा व्यंजित है। ग्रन्थ में वीर एवं श्रृंगार रसों का सुन्दर परिपाक है और प्रधानता विप्रलम्भ श्रृंगार की है। इसी प्रकार किव पद्मनाभ कृत 'कान्हड़दे प्रबन्ध ' में जालौर के चौहान शासक कान्हड़दे का खिलजी सुल्तान अलाउद्दीन के विरुद्ध किया गया संघर्ष उल्लिखित है। इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य में कल्पना एवं सत्य का सुन्दर सामंजस्य हु आ है। भिक्त साहित्य की रचनाओं में भी बृज या खड़ी बोली की भाषा का अपना योगदान है जिसे पूर्व इकाई में दर्शाया गया है।

रीतिकाव्य परम्परा में न केवल विद्वान बल्कि राजस्थान के शासक भी अपने लेखन से योगदान देने में नहीं चूके । मिर्जा राजा जससिंह के किव बिहारी की अन्योक्तियाँ अत्यन्त मार्मिक है । ब्रजभाषा का जैसा सुथरा व निखरा रूप इस काव्य में है, वैसा अन्यत्र नहीं । जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह ने इस दिशा में काफी योगदान दिया । बूंदी के राजा भावसिंह के आश्रय में मितराम ने 'लिलत ललाम ' लिखा जिसकी प्रतिपादन शैली अत्यन्त सरस एवं सहज है । बूंदी के ही नरेश बुद्धसिंह (1695 - 1739 ई.) ब्रजभाषा के श्रेष्ठ किव माने जाते हैं । उनकी रचना 'नेह तरंग ' रस ग्रन्थ है । कुलपित मिश्र व सूति मिश्र ने जयपुर एवं बीकानेर में रहकर काव्यांगो, काव्यदोषों, अलंकार आदि का विवेचन शास्त्रीय रीति से किया है । सोमनाथ व पद्माकर रसाचार्य है ।

सोमनाथ भरतपुर के थे तथा पद्माकर ने अलंकार, नायिका भेद और रस का सुन्दर चित्रण किया है । उन्होंने जयपुर नरेश जगतसिंह के आश्रय में 'जगदिवनोद ' एवं 'पद्माभरण ' लिखा ।

ब्रजभाषा के लेखकों ने अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्य को भी बहुत समृद्ध किया । हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग की नींव रखने में ब्रजभाषी लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान है । भारतेन्दु ने एक मंडली लेखकों की खड़ी की । पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित की और नाटक लिखे तथा राष्ट्र भाषा के स्वरूप को निखारा । कालान्तर में देशव्यापी हिन्दी प्रचार प्रसार हेतु बड़ी-बड़ी संस्थायें खड़ी की और आजादी की लड़ाई का एक माध्यम तथा राष्ट्रीय एकता व अखंडता के आंदोलन को ऊँचाइयों तक पहुँचाया । जन-जन को जोड़ा । मध्यदेशीय शौरसेनी अपभ्रंश की सभी बोलियों के रचनाकारों ने राष्ट्रभिक्त का परिचय दिया और स्वेच्छा से खड़ी बोली में गद्य, पद्य और प्रहसन का माध्यम बनाया ।

# 34.06 संस्थाओं दवारा ब्रजभाषा का संरक्षण एवं प्रोत्साहन

राजस्थान सरकार द्वारा राजस्थान साहित्य (संगम) की उदयपुर में स्थापना की गयी। कालान्तर में इससे राजस्थानी भाषा एवं संस्कृति केन्द्र को पृथक कर दिया। इसी तरह राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी की स्थापना सन् 1983 में की गई। जिसका कार्यालय जयपुर में स्थापित हुआ। राजस्थान शायद पहला राज्य है जहाँ, उर्दू, सिंघी, संस्कृत व हिन्दी की संवैधानिक स्वतंत्र अकादिमयाँ शिक्षा विभाग के अन्तर्गत काम कर रही है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ अकादमी तथा प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान तथा अभिलेखागारों में विपुल प्राचीन ग्रन्थ व पांडुलिपियाँ सुरिक्षत हैं। ये अकादिमयाँ शोध के बाहु लय केन्द्र हैं। इनमें रियासतों के ठिकानों तथा प्राचीन संग्रहालयों में दबे पड़े अनेक ग्रन्थों (पांडुलिपियों) को संगृहीत किया हु आ है। राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी देश की एक मात्र ब्रजभाषा की अकादमी है जिसका कार्यक्षेत्र राजस्थान मात्र है। किसी अन्य राज्य यथा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि ब्रजवासी क्षेत्रों में ऐसी कोई अकादमी नहीं है। अतः यह अकादमी प्रादेशिक सीमाओं से बाहर भी राष्ट्रीय स्तर पर ब्रजभाषा की संगोष्टियों, परिचर्चाएँ तथा अनुसंधान और शोध के कार्य में महत्वपूर्ण

योगदान कर रही है। राजस्थान में अज्ञात रहे रचनाकारों के मौलिक ग्रन्थों और उनकी जीवनियों का प्रकाशन, उनका सम्मान, पुरस्कार आदि ने भूली बिसरी ब्रजभाषा और पोथियों को उजागर कर उसके पुर्नःस्थापना और उद्वार का चिरस्थायी कार्य किया है। अकादमी द्वारा प्रकाशित पत्रिका ब्रजशत दल पहली संस्थागत ब्रजभाषा की एक मात्र पत्रिका है जिसकी वर्तनी भी ब्रज बोली पर आधारित है। अकादमी ने ब्रजभाषा को एकरूपता और मानक शब्दावली पर तीन राष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठियां कर उसका सर्वमान्य स्वरूप निर्धारित किया है। इससे अभी तक चला आ रहा विविध प्रकार का व्याकरणीय प्रयोग और अपभ्रंश उच्चारण तथा तत्सम शब्दों का बहिष्कार, तद्भव एवं देशज शब्दों का सही प्रयोग तथा क्रियापदों सर्वनामों और प्रत्यय और कारकों का एक-सा प्रयोग का रास्ता खुला है।

राजस्थान में ब्रजभाषा अकादमी की स्थापना के पूर्व जिन संस्थाओं ने ब्रजभाषा की सेवा की है उनमें भरतपुर की हिन्दी साहित्य समिति भरतपुर सन् 1912 में स्थापित की गई। जो आज भी जीवन्त है। निजी तौर पर रचित अनेक रचनाओं का उसने प्रकाशन किया है। भरतपुर राज्य की स्थापना से लेकर सन् 1919 तक के ब्रजभाषी कियों का एक संकलन स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ दो खंडों में प्रकाशित किया है पहला खंड समिति का इतिहास तथा दूसरा खंड किव कुसुमांजिल के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके सम्पादक डॉ. कुंजबिहारी लाल गुप्त थे यह संकलन निजी रचनाकारों की कितपय रचनाएं तथा कियों की जानकारी देता है। राजा बदनसिंह जो स्वयं किव थे, ने सन् 1791 में भरतपुर की स्थापना की थी। किव कुसमांजिल ग्रन्थ ब्रजभाषा का इतिहास समेटे हैं। जिसमें 239 वर्षों में भरतपुर राज्य में हुए 179 किवयों का परिचय व उनकी छंदों की जानकारी देता है। पांच काल खंडों में विभाजित यह ग्रन्थ 1. सोमनाथकाल 2. सूवनकाल 3. रामकाल पूर्वार्ध 4. रामकाल उत्तर्रार्घ तथा वर्तमान काल के रचनाकारों का समृद्ध ब्रजभाषा का काव्य का इतिहास है। वहीं काव्य शास्त्र की अमर कृतियों की जानकारी देता है। इसमें महाकिव सोमनाथ के सुजान चित्र तथा सूदन के रस पीयूषिनिधि, नगर के निवासी रामकिव की पंक्ति रचना एवं गोकुलचंद दीक्षित कृत माध्यव विनोद, सोमनाथ की मालती माध्य तथा सत्यनारायण किवरहनजी की अमर कृतियों की जानकारी मिलती है।

वर्तमान काल के 41 कवियों का दूसरा संकलन समिति ने राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के सहयोग से ब्रजगंधा के नाम से सन् 1984 में श्री गोपाल प्रसाद मुद्गल के सम्पादकत्व में प्रकाशित किया है । यह संकलन राजस्थान के ब्रजभाषी रचनाकारों के संक्षिप्त परिचय के साथ उनकी कतिपय छंदबद्ध रचनाओं की जानकारी देता है ।

ब्रज-गंधा का ' अंजरी भर बात ' शीर्ष से लिखा प्रामाणिक आलेख राजस्थान में ब्रजभाषा की स्थिति और विकास का दस्तावेज कहना चाहिये । राजस्थान के अतीत और वर्तमान की बहुत सी जानकारियाँ इसमें उल्लिखित है । डा. प्रभुदयाल मितल द्वारा रजवाड़ों के पोथीखानो, निजी पुस्तकालयों तथा अगरचंद नाहटा (बीकानेर) के ग्रन्थालय में ब्रजभाषा की पोथियों की जानकारी दी है । जिनमें स्वयं राजाओं के काव्य का उल्लेख है । उनके द्वारा रचित ग्रन्थों की जानकारी दी है । इसके अतिरिक्त अन्य रचनाकारों की नामावली व कविताओं के नमूने भी दिये हैं । इनमें दीसा के सुन्दरदास, पुष्कर के हित वृन्दावनदास, कवि जान, कवि लालचंद, भरतपुर के सोमनाथ, आदि अनेक रचनाकारों का परिचय दिया है।

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर ने झालावाड़ के राज्याश्रित कवि हरनाथ जी की ग्रन्थावली सन् 1966 में प्रकाशित की है । हरनाथ ग्रन्थावली छंदबद्ध रीति ग्रन्थ है । जिसमें छंद शास्त्र के नियमों पनियम तथा परिभाषा के उदाहरण भी कवि द्वारा स्वयं के रचित हैं । यह वृहद ग्रन्थ एक आचार्य कवि की अद्भुत कृति है । ब्रजभाषा की वर्तमान में काव्य शास्त्र की रीतियुक्त धरोहर है ।

अकादमी के गठन से पूर्व सन् 1969 में 'गागर ' नाम से प्रसिद्ध हुई दोहावली का प्रकाशन स्वयं किव गजेन्द्र सिंह सोलंकी ने कराया जिसे राजस्थान साहित्य अकादमी ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। सतसई की परम्परा की यह दोहावली राष्ट्रीय एकतामूलक सरस मुक्य काव्य संग्रह में कुल 677 दोहा है जिनमें 320 शृद्ध ब्रजभाषा के हैं।

कोटा के ही प. सुन्दर प्रसाद भटनागर द्वारा रचित सुन्दर सतसई सन् 1991 में प्रकाशित हुई है। यह कोटा राज की के व्यय से छपाई गई है। बांरा के डा. सियाराम सक्सैना प्रवर द्वारा रचित प्रवर सतसई सन् 1981 में प्रकाशित हुई है। हास्य रस की शास्त्रीय काव्यमय विवेचना की अद्भुत एवं एक मात्र कृति है।

### 34.07 अकादमी के प्रकाशन

ब्रजभाषा के बहु आयामी विकास का प्रमाण है अकादमी के महत्वपूर्ण साहित्य का प्रकाशन जो ब्रज की संस्कृति का सुरक्षित खजाना कहा जा सकता है। जिसमें अतीत से वर्तमान तक की वैभवशाली यात्रा के दर्शन होते है तथा नई पीढ़ी को आकर्षित करते हैं। गत 17 वर्षों में सृजित ग्रन्थों की संक्षिप्त सूची यहां दी जा रही है: 1. ब्रज की कला और संस्कृति 2. आधुनिक ब्रजभाषा गद्य 3. आँखर आँखर अनुराग 4. वल्लभ कुल की बलिहारी 5. ब्रज लोक वैभव 6. ब्रज बांसुरी 7. ब्रज लोक धारा 8. ब्रज लोक सागर 9. नई रंगत कौ ब्रजकाय 10. तीखे तेवर पैनी धार (नुक्कड़ नाटकों का विवेचन और संकलन) 11. मकरन्द (कविन्त सवैया विवेचन संकलन) इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत सृजन में दो उपन्यास 1. कंचन करत खरौ, गोपाल प्रसाद मुद्गल तथा काहै को झागरौ, डा. रामकृष्ण शर्मा द्वारा रचित ब्रज विभूति नाम से चार पुरोधाओं का समग्र साहित्य प्रकाशित है ये है सर्वश्री 1. पं. नंद कुमार शर्मा 2. श्री गिरिराज प्रसाद मिश्र 3. हरिकृष्ण कमलेश 4. गुरु कमलाकर तैलंग।

काव्य में अक्षय कीर्ति द्वारा रचित प्रतापशतक तथा डा. रामकृष्ण शर्मा द्वारा रचित तथा महाकवि सोमनाथ पुरस्कार से सम्मानित भारत सतसई तथा बिहारी सतसई का पुनर पुनर्मुद्रण तथा पं. गिरिधर शर्मा नवरत्न का व्यक्तित्व एवं कृतित्व ।

एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है 'राजस्थान ब्रजभाषा साहित्यकार परिचय कोष ' इसमें 121 जीवन्त रचनाकारों की जानकारी है।

ब्रजभाषा के अनेक अज्ञात रचनाकारों का जीवन परिचय उनके कृतित्व तथा समीक्षात्मक जानकारी के साथ उनका काव्य तथा गद्य आदि लेखन की पोथियों 63 प्रकाशित हुई है जिनके 15 ग्रन्थ बनाये गये हैं प्रत्येक ग्रन्थ में चार रचनाकारों के स्थायी सृजन को स्थान दिया है ऐसे 15 ग्रन्थ जिल्दबद्ध है ।

अखिल भारतीय संगोष्ठियों, आंचलिक सम्मेलनों में प्रस्तुत शोधपूर्ण सामग्री आलेखों के रूप में एकत्र हुए हैं जिनका पुस्तकाकार प्रकाशन होना शेष है । ये सामग्री अकादमी कार्यालय में सुरक्षित है । प्राप्त हुई अनेक पांडुलिपियां भी सम्पादन व प्रकाशन की प्रतीक्षा में है । ब्रज -शत दल पत्रिका का नियमित प्रकाशन होता रहा है ।

# 34.08 इकाई सारांश

राजस्थान की दुर्गम अरावली एवं मरुभूमि पर ब्रजभाषा की उन्नति हर प्रकार के प्रोत्साहन से हुई है। प्रारम्भ में 11 वीं से 14 वीं शताब्दी तक ब्रजभाषा पिंगल साहित्य के नाम से पल्लवित होती रही। तत्पश्चात् उत्तरी भारत में आयी भिक्त आन्दोलन की लहरों ने उसे साहित्य की श्रेणी में नये ढंग से प्रोत्साहित किया। अपभ्रंश -सौरशैनी की यह भाषा नयी रचनाओं से जन -जन की भाषा बन गयी। राजस्थान में मुख्यतः इसका क्षेत्र उत्तरी -पूर्वी राजस्थान ही रहा। रीतिकाल या उत्तर मध्यकाल में यह अवश्य मरू प्रदेश में भी पहुँच गयी। रीतिकाल में ब्रजभाषा का कलात्मक निखार पूर्ण साज -सज्जा सहित प्रकट होने लगा। इस काल के प्रसिद्ध किव बिहारी, जान किव, पद्माकर, सूरितिमिश्र, सोमनाथ प्रभूति जैसे हु ए हाड़ौती संभाग में भी यह भाषा वल्लभ सम्प्रदाय के कारण प्रसारित होने लगी एवं कोटा -बूंदी में अनेक रचनाएँ लिखी गयी। यज्ञ भाषा हिन्दी के आधुनिक काल में भी अपना योगदान देना नहीं भूली। बिल्क स्वाधीनता की चिंगारी सुलगाने में सहायक बनी। स्वतन्त्रता के पश्चात राजस्थान से उदाहरण के रूप में ब्रज अकादमी स्थापित की गयी जिसने इस भाषा को साहित्यक रूप से जीवन्त बनाने में अपना योगदान दिया है।

# 34.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

#### (अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये : -

- (1) 'पिंगल' रचनाओं से क्या तात्पर्य है।
- (2) हाड़ौती संभाग में ब्रजभाषा के विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
- (3) रास एवं रासौ साहित्य से क्या तात्पर्य है।
- (4) आमेर-जयपुर के रीतिकालीन कवियों की रचनाओं की विशेषताएँ बतलाइये ।

# (ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये : -

- (1) ब्रजभाषा के विकास में वल्लभाचार्य सम्प्रदाय का क्या योगदान है ।
- (2) रीति काव्य ने ब्रजभाषा को किस प्रकार निखारा एवं सराहा ।
- (3) राजस्थान की ब्रजभाषा अकादमी के क्रियाकलापों पर प्रकाश डालिये ।

# इकाई सं. 35 "राजस्थान में शैक्षणिक संस्थाएँ व अकादिमयाँ"

#### इकाई संरचना

- 35.01 उद्देश्य
- 35.02 प्रस्तावना
- 35.03 प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा
- 35.04 उच्चशिक्षा संस्थाएँ
  - 35.04.1 विश्वविद्यालय
  - 35.04.2 तकनीकी शिक्षा
  - 35.04.3 कृषि विश्वविद्यालय एवं कॉलेज
  - 35.04.4 चिकित्सा शिक्षा एवं अन्य
- 35.05 सांस्कृतिक अकादिमयाँ एवं अकादिमक संस्थाएँ
- 35.06 शोध संस्थान
- 35.07 इकाई सारांश
- 35.08 अभ्यासार्थ प्रश्न

# 35.01 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान पायेंगे कि : -

- (1) राजस्थान में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार के प्रयास किये गये हैं।
- (2) सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त तकनीकी, चिकित्सा व कृषि के क्षेत्र में किन-किन संस्थाओं का जन्म हु आ है ।
- (3) परम्परागत शिक्षा पद्धति के अलावा दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को लागू करने की दिशा में किस प्रकार के प्रयत्न हुए हैं।
- (4) राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर एवं परम्पराओं को जीवित बनाये रखने के लिये संस्थागत स्तर पर क्या प्रयास किये गये हैं।

#### 35.02 प्रस्तावना

मध्ययुग में शिक्षा का ध्येय सामाजिक, आर्थिक एवं बौद्धिक होने के साथ-साथ नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नित से भी रहा है । 16 वीं से 19 वीं शताब्दी के काव्य ग्रन्थों एवं पुरालेख सामग्री, हस्तिलिखित ख्यातों, वंशाविलयों, खरडो, आदि के अध्ययन से ज्ञात होता है कि धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड, पुराण, चिकित्सा, नीति, मीमांसा, वेद-शास्त्र, गणित, ज्योतिष, व्याकरण, साहित्य आदि विषयों पर पठन-पाठन होता था । पांच वर्ष की आयु से विद्यारम्भ कर 18 वर्ष की अविध में विद्यार्थी को विद्या के कई क्षेत्रों में पारंगत कर दिया जाता था ।

शिक्षा का प्राथमिक केन्द्र बालकों के लिए परिवार ही होता था । पारिवारिक शिक्षा केन्द्र से निकल कर विद्यार्थी को शिक्षा केन्द्र आश्रम में जाना होता था - जहाँ गुरु परम्परा का निर्वाह होता था । पठन-पाठन प्राय: व्याख्यान वाद-विवाद, तर्क वितर्क से होता था । गुरु शिष्य को पारंगत करने

के बाद राजदरबार में शास्त्रार्थ हेतु भेजता था। नरेशों के अपने गुरु होते थे, जो राजपरिवार के किशोर युवाओं को शिक्षा देते थे। वैसे राजकुंवरों को राजनीति एवं सैन्य विद्या में विशेष दक्ष किया जाता था। गुरुओं को दानमान में प्राप्त गांव शिक्षा केन्द्रों के रूप में विकसित हो जाते थे। धार्मिक सदाचार की शिक्षा देने हेतु जैन उपासरे, मठ, मंदिरों को प्रयोग में लाया जाता था। मध्यकाल में प्रारंभिक शिक्षा के लिए संस्थाएँ स्थानीय संस्थाओं के रूप में जो शिक्षणालय कार्यरत थे उन्हें पाठशाला, पोसाल, नेसाल, चौकी कहा जाता था।

डॉ. दशरथ शर्मा ने 'अली चौहान डायनेस्टीज' (पृ. 290) में उल्लेख किया है कि 12 वीं शताब्दी के अन्त तक अजमेर के हर कोने में मठ या पाठशालाएं थीं । जैन ग्रन्थों से पता चलता है कि चित्तौड़ भी शिक्षा का बड़ा केन्द्र था । आबू तांत्रिक विद्या एवं भीनमाल ब्राह्मणी शिक्षा का केन्द्र था । विद्वानों को पंडित, उपाध्याय, महामहोपाध्याय, आचार्य आदि उपाधि दिए जाने का उल्लेख प्राप्त होते हैं । उर्दू, फारसी, अरबी की पढ़ाई, 'मकतब' मदरसा में होती थी । मध्यकाल में नरेशों ने भी शिक्षा क्षेत्र में दिलचस्पी ली जिसका पता उदयपुर सरस्वती भंडार, कोटा सरस्वती भंडार, जोधपुर पुस्तक प्रकाश, बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, जयपुर का पोथीखाना आदि में संगृहीत हस्तिलिखत ग्रन्थ सम्पदा से लगता है । 19 वीं शताब्दी में एक ओर शिक्षा का पारम्परिक स्वरूप नजर आता है तो दूसरी ओर अंग्रेजी राज्य की शिक्षा में कुछ नवीनता दृष्टिगत होती है 1819 ई. में सबसे पहला आधुनिक स्कूल अजमेर में खोला गया । 1835 में अंग्रेजी भाषा को राजकीय बनवाया गया । अलवर, भरतपुर में भी अंग्रेजी स्कूल खुले । जयपुर में महाराजा स्कूल, जोधपुर में दरबार स्कूल, उदयपुर में शंभुरत्न पाठशाला की स्थापना हुई जहां हिन्दी उर्दू फारसी, संस्कृत तथा अंग्रेजी की पढ़ाई होती थी । इस पाठ्यक्रम की शृंखला में शिक्षा एवं अध्ययन पर एक अलग इकाई है उसमें शिक्षा पर विस्तार से लिखा गया है ।

# 35.03 प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा

राजस्थान में शिक्षा का प्रसार योजनाबद्ध एवं सर्वांगीण प्रसार स्वाधीनता के बाद से हुआ। राजस्थान में 1981 में शिक्षा का प्रसार 24.38% था। नये जनसंख्या गणना के आकड़ों के अनुसार 2001 ई. में साक्षरता का प्रतिशत 61.06% जिसे आशाजनक माना जा सकता है। इसमें पुरुषों का 76.46 तथा स्त्रियों का 44.34% है।

राज्य के विद्यालयों में शिक्षा के सार्वजनिकरण के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वर्ष 1997-98 तक में विदयालयों के वर्गीकरण को निम्न तालिका से देखा जा सकता है।

> सीनियर माध्यमिक विद्यालय – 1572 माध्यमिक विद्यालय – 3675 उच्च प्राथमिक विद्यालय – 12939 प्राथमिक विद्यालय – 33648 पूर्व प्राथमिक विद्यालय – 28

राजस्थान में माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक तथा सीनियर विद्यालयों में लगभग 7 लाख बालक, बालिकाएं शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। राज्य में माध्यमिक शिक्षा को आधुनिक, वैज्ञानिक, प्रगतिशील बनाने के लिए राज्य सरकार द्वारा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की स्थापना 1957 में की गई है। वर्तमान में 125 सीनियर उच्च माध्यमिक विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा दी जा रही है।

शिक्षकों को प्राथमिक स्तर पर प्रशिक्षित एवं प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से गुरुमित्र योजना, बालिका शिक्षा हेतु सरस्वती योजना एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन की दृष्टि से राज्य में नवोदय विद्यालय चलाए गए । जिससे प्रतिभावान, छात्रों को अच्छी शिक्षा प्रदान कर तेजी से आगे बढ़ने के अवसर प्रदान किए जाते हैं । राज्य के 20 जिलों में नवोदय विद्यालय खोले गये हैं जिसमें 75% सीटें ग्रामीण छात्रों के लिए आरक्षित की गई हैं । प्रवेश से पूर्व परीक्षा ली जाती हैं । आजकल राजस्थान सरकार की श्री राजीव गांधी स्वर्ण जयन्ती पाठशालाओं का नया प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी

परिवर्तन ला रहा हे राजस्थान में पब्लिक स्कूल का प्रचलन देशी रियासतों के काल से चला आ रहा है। जिसमें मेयो एवं कॉलेज, अजमेर का नाम मुख्य रूप से लिखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त माउण्ट आबू उदयपुर, वनस्थली, जयपुर संस्कृति आदि की ऐसी संस्थाएँ काफी लोकप्रिय हैं। बीकानेर के सार्द्ल स्पीटस स्कूल एवं चित्तौड़गढ़ के सैनिक स्कूल का अपना इतिहास एवं महत्व है।

# 35.04 उच्च शिक्षा संस्थाएँ

स्वतन्त्रता से पूर्व राज्य में शिक्षा के स्नातक स्नातकोत्तर महाविद्यालयों की संख्या लगभग 13 थी । 1998-99 में प्रदेश में स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के महाविदयालयों की संख्या बढ़कर 279 हो गयी जिनमें से 257 कॉलेज शिक्षा निदेशालय के नियन्त्रण में कार्यरत हैं एवं 22 विभिन्न विश्वविद्यालयों के संघटक महाविद्यालय हैं । कॉलेज शिक्षा निदेशालय के अन्तर्गत 101 राजकीय, 75 अनुदानित एवं 81 गैर-अनुदानित महाविद्यालय प्रदेश में कार्यरत हैं । इनमें भी 90 स्नातकोत्तर स्तर के हैं (48 राजकीय, 41 अनुदानित एवं 01 निजी महाविद्यालय है ।) । 101 महाविद्यालय महिला शिक्षा के हैं (29 राजकीय, 31 अनुदानित एवं 50 गैर अनुदानित तथा 101 में 7 स्नातकोत्तर राजकीय एवं 12 अनुदानित स्तर के हैं।) या अनुदानित महाविद्यालयों में 5 शोध संस्थान सम्मिलित है । जयपुर स्थित राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्स एवं संगीत संस्थान अपने स्तर की लोकप्रिय संस्थाएँ हैं । प्रदेश में स्थित विश्वविद्यालयों के संघटक महाविद्यालयों में राजस्थान विश्वविद्यालय जयप्र के पांच, सुखाड़िया विश्वविदयालय, उदयप्र के चार संघटक महाविदयालय हैं । जयनारायण विश्वविदयालय जोधप्र में कमला नेहरू महिला महाविद्यालय के अतिरिक्त सामान्य शिक्षा के चार संघटक महाविद्यालय उसके संकायों के रूप में कार्यरत हैं । उदयपुर एवं बीकानेर के कृषि विद्यालयों के अपने संघटक हैं । इसके अतिरिक्त 44 शिक्षक प्रशिक्षण एवं 20 शास्त्री महाविद्यालय, 18 संस्कृत महाविद्यालय, 6 प्रबन्ध महाविद्यालय, 2 शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय एवं 10 अन्य प्रकार के महाविद्यालय सम्मिलित हैं।

# 35.04.1 विश्वविद्यालय

1947 ई. में राजस्थान विश्वविद्यालय की स्थापना जयपुर में ही राजपूताना विश्वविद्यालय के नाम से ही गयी थी। वर्तमान में 9 विश्वविद्यालय एवं 4 विश्वविद्यालयवत् संस्थाएँ कार्यरत हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से हैं:-

- (1) राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर : जैसािक लिखा जा चुका है राजपूताना विश्वविद्यालय के नाम से यह संस्था 8 जनवरी 1947 ई. में स्थापित की गयी थी । 1988-89 ई. में जयपुर समाज के अतिरिक्त अलवर, भरतपुर, सीकर, धौलपुर, दौसा तथा झुन्झुनू में स्थित सभी महाविद्यालय राजस्थान विश्वविद्यालय से संबंद्ध कर दिए गए हैं । 110 महाविद्यालय इससे संबंद्ध हैं ।
- (2) महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर : -इस विश्वविद्यालय की स्थापना 1987 जुलाई में हुई । जयपुर अजमेर राष्ट्रीय राजमार्ग पर बनने वाले विश्वविद्यालय भवन के लिए 256 बीघा जमीन राज्य सरकार द्वारा आवंटित की गई है । मूलतः यह विश्वविद्यालय यद्यपि इसका अपना संकाय है, संवर्धन के दायित्व का निर्वाह करता है । अजमेर, भीलवाड़ा, नागौर, टोंक, बीकानेर, चूरू, श्री गंगानगर, बांस, कोटा, बूंदी झालावाड़, करौली, सवाई माधोपुर, एवं हनुमानगढ़ जिलों के महाविद्यालय सम्बन्धित हैं ।
- (3) जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर : इसकी स्थापना 1962-63 में की गई थी । जोधपुर में स्थित महाविद्यालय इसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत है । स्वतन्त्रता सेनानी स्वर्गीय श्री जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय के नाम से रखा गया पूर्व में यह जोधपुर विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता था ।
- (4) मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर : उदयपुर विश्वविद्यालय के नाम से इसकी स्थापना 6 जून, 1962 को हुई । 1982 में राज्य के स्वर्गीय मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया के नाम पर इसे सुखाड़िया विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता है ।
- (5) कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा : 23 जुलाई 1987 को इस विश्वविद्यालय की स्थापना की गई । इसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से मान्यता प्राप्त है । एसोसियेशन ऑफ इण्डियन युनिवर्सिटीज एवं दूरस्थ शिक्षा परिषद से भी इसे मान्यता प्राप्त है । क्षेत्र की दृष्टि से सम्पूर्ण राज्य का क्षेत्र इसकी सीमा है । राज्य के प्रत्येक डिविजनल मुख्यालय में इसका एक क्षेत्रीय केन्द्र है । इस समय उनकी संख्या 6 है । इसके अतिरिक्त इसके अध्ययन केन्द्र राज्य के विभिन्न नगरों एवं कस्बों में स्थित है । इसके दो अध्ययन केन्द्र सैन्य क्षेत्र में भी स्थित है । इसके परिसर में अपना स्टूडियो है तथा इसके विभिन्न पाठ्यक्रमों का अध्ययन, मुद्रित सामग्री, टयूटरिंग काउंसलिंग, इण्टर-एक्टिव रेडियो काउंसलिंग, दूरदर्शन काउंसलिंग, विद्यार्थी सहायता सेवा के माध्यम से सम्पन्न किया जा रहा है।

इस विश्वविद्यालय की दूरस्थ एवं मल्टी मीडिया प्रणाली से न केवल कस्बों एवं गांवों में बैठे विद्यार्थी उच्च व व्यवसायिक शिक्षा का लाभ ले सकते हैं बिल्क व्यवसायों में जुटे व्यक्ति, गृहणियाँ, श्रमिक, सैनिक अपने रोजगार के दायित्वों के साथ-साथ अपना शिक्षण-प्रशिक्षण आगे बढ़ा सकते हैं । इस विश्वविद्यालय की शिक्षा प्रणाली में लचीले प्रवेश नियम बिना प्रतिशत के झंझट के प्रवेश, प्रत्येक पाठ्यक्रम को पास करने के लिये नियत समय के साथ-साथ अधिकतम समय अवधि, नियमित उपस्थिति की बाधा नहीं, परीक्षा-समय की स्वतन्त्रता, विशेषज्ञों द्वारा निर्मित पाठ्यक्रम सामग्री, आदि, आदि विशेषताएँ हैं । इसकी अध्ययन प्रणाली क्रेडिट व्यवस्था पर टिकी हु ई है । इस समय विश्वविद्यालय लगभग 18 पाठ्यक्रम चला रहा है । दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय राज्य में सिक्रय है और उसका क्षेत्रीय केन्द्र जयपूर में स्थित है ।

- (6) राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर : -राजस्थान सरकार ने 1998 के अधिनियम के अनुसार राज्य में संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना कर दी है जिसने नई शताब्दी में कार्य करना भी प्रारम्भ कर दिया है । इसका क्षेत्रफल भी सम्पूर्ण राज्य है । वैसे अलग से राज्य में 18 संस्कृत महाविद्यालय है ।
- (7) राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय : राज्य में राष्ट्रीय स्तर का पहला विश्वविद्यालय विधि क्षेत्र में खोला गया है और उसकी स्थापना जोधप्र में की गई है ।
  - (8) राज्य में कृषि विश्वविद्यालय है जिनका विवरण आगे दिया गया है।

वनस्थली विद्यापीठ : - राजस्थान के पूर्व मुख्यमंत्री स्वर्गीय श्री हीरालाल शास्त्री ने जयपुर से 45 मील दूर वनस्थली टोंक में विद्यापीठ की स्थापना की । इसे 'डीम' विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त है ।

अन्य शिक्षण संस्थान : उपरोक्त शिक्षण संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य कई संस्थान कार्यरत हैं जिनमें जैन विश्वभारती लाडनूं बिड़ला, टेक्नोलॉजी एवं विज्ञान संस्थान, पिलानी, राजस्थान विद्यापीठ संस्थान, उदयपुर आदि।

#### 35.04. 2 तकनीकी शिक्षा

राज्य में वर्ष 1957 में प्रावैधिक शिक्षा के विकास हेतु एक पृथक निदेशालय की स्थापना की गई है जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित संस्थान कार्यरत हैं । वर्ष 1998 - 99 में कार्यरत उच्च शिक्षा संस्थाओं में 10 तकनीकी एवं अभियांत्रिक महाविद्यालय, 24 पोलीटेक्लिनक महाविद्यालय सिम्मिलित हैं । जिनमें मुख्य निम्न प्रकार से हैं : -

#### (1) अभियांत्रिक संस्थानः (स्नातक एवं स्नातकोत्तर)

राज्य के पांच अभियांत्रिकी महाविद्यालय, जोधपुर, उदयपुर, कोटा व पिलानी में है । जहां अभियांत्रिक स्नातक एवं स्नातकोत्तर की शिक्षा दी जाती है । ये सभी स्वातशासी संस्थान हैं । अभी सरकार ने बीकानेर में भी एक अभियांत्रिक महाविदयालय खोलने की स्वीकृति प्रदान कर दी है ।

भीलवाड़ा के माणिक्य लाल वर्मा टेक्सटाइल संस्थान जहां डिप्लोमा स्तर के पाठ्यक्रम पढाये जाते थे वर्ष 1988-89 में इसे स्नातक स्तर पर क्रमोन्नत किया गया । सरकार ने पिछले वर्ष से निजी क्षेत्र में अभियांत्रिकी व पोलीटेक्निक महाविद्यालयों को स्वीकृति देने की नीति की घोषणा की है जिसके परिणाम भी तेजी से सामने आ रहे हैं । सरकार की

यह नीति महाराष्ट्र एवं कर्नाटक राज्यों की भांति हैं।

(2) दस्तकार प्रशिक्षण : दस्तकारों के प्रशिक्षण के लिए राज्य में 63 राजकीय औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान तथा 102 निजी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान कार्यरत हैं । इनकी स्थापना से राज्य के कुल 33 राजकीय तथा 35 गैर राजकीय आई.टी.आई. संस्थान कार्यरत हैं ।

# 35.04.3 कृषि विश्वविद्यालय एवं कॉलेज :

कृषि शिक्षा के क्षेत्र में राजस्थान में दो कृषि विश्वविद्यालय उदयपुर एवं बीकानेर में अवस्थित हैं । ऐतिहासिक नायक मेवाइ के वीर महाराणा प्रताप पर रखा गया है । इस विश्वविद्यालय का क्षेत्र उदयपुर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, राजसमन्द, चित्तौड़गढ़, सिरोही, भीलवाड़ा, कोटा, बांस, झालावाड़ एवं बूंदी जिलों को रखा गया है । राज्य के बाकी सभी जिले बीकानेर स्थित राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आते हैं । उदयप्र, सांगरिया, जोबनेर, अजमेर के कृषि महाविद्यालय चर्चित हैं ।

#### 35.04.4 चिकित्सा शिक्षा एवं अन्य

#### मेडिकल कॉलेज :

चिकित्सा शिक्षा के बारे में क्षेत्र में शैक्षिक संस्थानों का विवरण निम्न प्रकार से है : -

- (1) एस.एम.एस. मेडिकल कॉलेज, जयप्र
- (2) जवाहरलाल नेहरू मेडिकल कॉलेज, अजमेर
- (3) सरदार पटेल मेडिकल कॉलेज, बीकानेर
- (4) सम्पूर्णानन्द मेडिकल कॉलेज, जोधपुर
- (5) रवीन्द्रनाथ टैगोर मेडिकल कॉलेज, उदयपुर ।
- (6) मेडिकल कॉलेज, कोटा

### आयुर्वेदिक कॉलेज :

राज्य में पांच आयुर्वेदिक महाविद्यालय हैं जिनमें पुराने निम्न हैं ।

- (1) राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज, जयपुर
- (2) राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज, अजमेर
- (3) राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज, उदयपुर

पशु चिकित्सा शिक्षण हेतु कॉलेज ऑफ वेटनरी एण्ड एनीमल हस्बैन्ड्री नाम से बीकानेर में स्थित है। इसके अतिरिक्त 6 फार्मेसी एवं 6 ही नर्सिंग महाविदयालय हैं।

#### शिक्षण प्रशिक्षण संस्थान :

राज्य में 44 स्थानों पर शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थान है। शिक्षा नीति के अनुसार शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान हैं, जिसका मुख्यालय उदयपुर में है।

#### प्रौढ शिक्षा :

2 अक्टूबर, 1978 में राजस्थान प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय की स्थापना की गई जिसके अन्तर्गत 14602 केन्द्रों से 4.45 लाख प्रौढ़ों को साक्षर किया जा रहा है। 1988 में इसी के अन्तर्गत राज्य साक्षरता प्राधिकरण का गठन किया जा चुका है।

# 35.05 सांस्कृतिक अकादमियाँ एवं अकादमिक संस्थाएं

राजस्थान के कला, साहित्य एवं संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु अनेक अकादमियाँ कार्यरत हैं, जो निम्नलिखित हैं :-

1. राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर - 1985 में स्थापित हु ई यहां संस्था ग्रन्थ एवं पत्रिका प्रकाशन, पाण्डुलिपि व प्रकाशन योजना, साहित्यिक संस्थाओं का प्रसार, मूर्धन्य साहित्यकारों का सम्मान आदि योजनाओं एवं कार्यक्रमों में व्यस्त है।

- 2. राजस्थान लित कला अकादमी, जयपुर राज्य में कला के प्रचार-प्रसार तथा कलाकारों के स्तर को ऊंचा उठाने के उद्देश्य को रखते हुए 1957 ई. में स्थापित हुई । कला प्रदर्शनियों का आयोजन, कलाकारों का सम्मान, फैलोशिप आदि इसकी प्रवृति है ।
- 3. पश्चिमी क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र : भारत को जो विभिन्न सात सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभक्त करने की योजना बनायी गयी थी उसमें पश्चिमी क्षेत्र का केन्द्र 1986 ई. में उदयपुर, राजस्थान में स्थापित किया गया । इस क्षेत्र में राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात, महाराष्ट्र, गोआ, दमन, दीप अन्य प्रदेश हैं । यहां पर स्थापित 'शिल्प ग्राम ' सामूहिक संस्कृति के केन्द्र के रूप में दर्शनीय है ।
- **4. राजस्थान ब्रज भाषा अकादमी जयपुर. -** 1983 से स्थापित ब्रजभाषा के सम्यक् प्रसार-प्रचार के उद्देश्य पूर्ति हेतु स्थापित की गयी ।
- 5. राजस्थान संगीत नाटक अकादमी जोधपुर : राजस्थान की संगीत एवं नाट्य विधाओं के प्रचार-प्रसार के लिये स्थापित की गयी । नाट्य, लोक नाट्य, शास्त्रीय गायन, वादन, नृत्य, लोक संगीत आदि गतिविधियों का संचालन करती है।
- 6. राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी बीकानेर 1983 में स्थापित, राजस्थानी भाषा के साहित्य के विकास हेतु । पत्रिका प्रकाशन, पोथी प्रकाशन आदि मुख्य गतिविधियाँ हैं ।
- 7. राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर संस्कृत भाषा के प्रचार -प्रसार एवं विकास हेतु 1081 से स्थापित है । वेद संरक्षण योजनान्तर्गत ज्योतिष परीक्षण एवं कर्मकाण्ड शिविरों का आयोजन, वेद विद्यालयों का संचालन, पित्रका प्रकाशन संस्कृत के वयोवृद्ध विद्वानों का सम्मान आदि योजनाएं एवं कार्यक्रम हैं ।
- 8. राजस्थान सिन्धी अकादमी, जयपुर सिन्धी भाषा के प्रचार-प्रसार हेतु स्थापित है। सिन्धी भाषा के विद्वानों का सम्मान, पुस्तकों का प्रकाशन समारोहों का आयोजन आदि ।
- 9. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर हिन्दी भाषा में रचनाओं एवं साहित्य के विकास और स्मृति में स्थापित की गयी । इस अकादमी ने उच्चिशक्षा के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन किया है ।
- 10. राजस्थान उर्दू अकादमी उर्दू भाषा एवं साहित्य को प्रोत्साहित करने हेतु स्थापित। उर्दू वाचनालय, पत्रिका प्रकाशन, सेमीनार, मुशायरे का आयोजन आदि प्रवृत्तियां हैं।
- 11. रविन्द्र रंगमंच जयपुर सांस्कृतिक कार्यक्रम के प्रदर्शन हेतु जयपुर में रविन्द्र रंगमंच की स्थापना की ।
- 12. जयपुर कत्थक केन्द्र जयपुर का कत्थक घराना कत्थक नृत्य के लिए विख्यात है यहां कत्थक नृत्य को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से राज्य सरकार ने कत्थक केन्द्र की स्थापना की है जो वर्ष 1979 80 से कार्यरत है।
- 13. राजस्थान लितिकला अकादमी, जयपुर इस अकादमी द्वारा नये युवा रंगकर्मियों को प्रोत्साहित किया जाता है और अकादमी प्रत्येक वर्ष नये चित्रकारों के चित्रों की प्रदर्शनी आयोजित करती है।

- 14. जवाहर कला केन्द्र, जयपुर 1993 ई. में राजस्थान सरकार ने राजस्थान की संस्कृति एवं परम्पराओं को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि में सजीव रखने के लिये इस केन्द्र की स्थापना की थी । बहुत थोड़े ही समय में इस ने अपनी सांस्कृतिक गतिविधियों के लिये आकर्षण व चर्चा का क्षेत्र बना लिया है । इसका शिल्पग्राम, प्स्तकालय आर्ट गैलेरी, दर्शनीय है ।
- **15. गुरु नानक संस्थान, जयपुर** यह संस्थान कला, संस्कृति व साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर रहा है ।
  - 16. राजस्थान कला संस्थान यह संस्थान कला विकास हेत् कार्यरत है।
- 17. रूपायन संस्थान जोधपुर जिले में बोरून्दा गांव में सन् 1960 में स्थापित संस्था 'रूपायन ' एक सांस्कृतिक व शैक्षणिक संस्था के रूप में कार्यरत है, यह संस्था सहकारी प्रयास का प्रतिफल है, राजस्थानी लोक गीतों, कथाओं एवं भाषाओं की परम्परागत धरोहर की खोजकर यह संस्था उन्हें क्रमबद्ध संकलन का रूप प्रदान कर रही है । इस संस्थान के पास स्वयं का निजी प्रेस, पुस्तकालय एवं रिकार्ड करने के उपकरण हैं। इसे राज्य एवं केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मदों से अनुदान प्राप्त होता है ।
- 18. राजस्थान राज्य क्रीड़ा परिषद राज्य में खेलों व खिलाड़ियों के प्रोत्साहित करने हेतु यह परिषद प्रमुख भूमिका निभा रही है । यह प्रतिवर्ष राज्य एवं अखिल भारतीय स्तर पर खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन कराती है और राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ियों को प्रोत्साहित करती है ।
- 19. राजस्थान राज्य अभिलेखागार राज्य सरकार के अभिलेखों को सुरक्षित रखने के लिए कार्यरत राज्य अभिलेखागार का मुख्यालय बीकानेर में है तथा जयपुर, अजमेर, अलवर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा एवं भरतपुर में इसकी शाखाएं स्थापित हैं । इसके द्वारा ' 'राजस्थान के स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास ' तथा 'राजस्थान थ्रू एजेज ' के द्वितीय एवं तृतीय खंड की पाण्डुलिपियां तैयार करवायी गई है । इतिहासकारों की दिष्ट में इस अभिलेखागार में रखे दस्तावेज व प्रपत्र न केवल राजस्थान बिल्क उत्तरी भारत का सामाजिक व आर्थिक इतिहास नये ढंग से लिखने में सक्षम है ।

# 35.06 शोध संस्थान

राजस्थान में ग्रन्थ सम्पदा के अथाह भंडार है। राजस्थान सरकार द्वारा संस्थापित राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान जोधपुर तथा इसकी विभिन्न शाखाएँ, बीकानेर का 'अनूप संस्कृत पुस्तकालय ', चूरू का नगर श्री, जैसलमेर का जिनभद्र सूरि ज्ञान भंडार, जोधपुर में राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश मेहरानगढ़, उदयपुर का प्रताप शोध संस्थान, बीकानेर का सार्दुल रिसर्च इंस्टीट्यूट, रावटी का सम्यक् ज्ञान भंडार आदि संस्थान जहां संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, ब्रज आदि भाषाओं के लाखों ग्रन्थ संगृहीत हैं।

इसके अतिरिक्त जयपुर के सिटी पैलेस म्यूजियम स्थित पौथीखाना, अरबी-फारसी शोध संस्थान टोंक, प्रताप शोध प्रतिष्ठान एवं साहित्य संस्थान, उदयपुर में तथा बीकानेर में अभय जैन ग्रंथालय के अतिरिक्त निजी व्यवस्था में चल रहे कई महत्वपूर्ण संग्रह भी हैं। इन ग्रन्थागारों की अमूल्य ज्ञान सामग्री से विद्यार्थियों, शोधार्थियों के ज्ञान में अभिवृद्धि हो इसी उद्देश्य की पूर्ति राजस्थान सरकार का कला संस्कृति मंत्रालय एवं पर्यटन विभाग कर रहा है ।

यहाँ कुछ संस्थाओं एवं भंडारों का ही उल्लेख किया गया है जबकि ऐसी गतिविधियाँ राजस्थान के प्रत्येक स्थल पर बिखरी पड़ी है। जैसे, फतेहपुर-शेखावाटी का सरस्वती पुस्तकालय। टोंक का अरबी व फारसी भाषा का शोध केन्द्र की राष्ट्रीय स्तर का है और यहां बहु मूल्य पांडुलिपियाँ संगृहीत हैं। जयपुर एवं नागौर के जैन ग्रन्थ भंडार: जेन ग्रन्थ भंडारों की सूची निम्नलिखित है -

- 1. पण्डित लूणकरण पांड्या जयप्र का ग्रन्थ भंडार;
- 2. बड़ा तेरह पंथियों का जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार;
- 3. बाबा दुलीचन्द बड़ा मंदिर ग्रन्थ भंडार;
- 4. पाटौदी जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार:
- 5. जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार जोबनेर, जयपुर,
- चौधरियों का जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार;
- 7. संघीजी जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार, जयपुर;
- 8. बैराठियों का जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार;
- 9. छोटे दीवान जी का जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार;
- 10. गोधों का दिगम्बर जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार, जयप्र;
- 11. यशोदानन्द जी का जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार, जयपुर;
- 12. विजयराम पांडया का जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार, जयपुर
- 13. पार्श्वनाथ का जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार, जयपुर;
- 14. आमेर ग्रन्थ भंडार, जयपुर;
- 15. वृद्धीचन्द जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार;
- 16. खतर गच्छीय ज्ञान भंडार जैन उपाश्रय;
- 17. लश्कर जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार,
- 18. मरूजी जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार;
- 19. थोलिया जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार, जयपुर एवं
- 20. बीसपंथी दिगम्बर जैन मंदिर ग्रन्थ भंडार, बड़ा मंदिर नागौर

अन्ततः यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि राजस्थान के शैक्षिक परिवेश में यहां की संस्कृति को संजोये रखा है ।

# 35.07 इकाई सारांश

इस प्रकार इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने पाया होगा कि राजस्थान में शैक्षिक संस्थाओं की अपनी पृष्ठभूमि है वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात इस दिशा में तेजी से प्रगति हुई है। एक के स्थान पर 2 विश्वविद्यालय हो गये तथा तीन-चार इस स्तर को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हैं। संस्थाओं में विविधता भी है जहां सामान्य शिक्षा के विश्वविद्यालय है वहीं दूसरी और कृषि एवं दूरस्थ शिक्षा पद्धतियाँ भी क्रियाशील है। महाविद्यालयों की संख्या भी 13 से बढ़कर 279

हो गयी है जिसमें 110 महिला शिक्षा के हैं । चिकित्सा, कृषि, आयुर्वेद, फार्मेसी, नर्सिंग, शारीरिक प्रशिक्षण, शिक्षण प्रशिक्षण संस्थान सभी की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है । राजस्थान प्रदेश देश के मानचित्र में शिक्षा

को लेकर अनुशासित क्षेत्र माना जाता है। इसी भांति प्रदेश की भाषा, संस्कृति एवं परम्पराओं को प्रोत्साहन देने के लिये अनेक अकादिमियाँ स्थापित की गयी है व कलाकेन्द्र व रंगमंच खड़े किये गये हैं तािक समृद्ध परम्पराएं भुलायी नहीं जा सके व साथ ही राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय स्तर पर उसकी पहचान भी बनायी जा सके। शोध के क्षेत्र में भी राजस्थान अग्रणीय है और मानव इतिहास सम्पदा को नये ढंग से रचने में सबल है।

# 35.06 अभ्यासार्थ प्रश्न

#### (अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये : -

- (1) राजस्थान में कृषि शिक्षा क लिये स्थापित संस्थाओं का विवरण दीजिये ।
- (2) प्रदेश में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को प्रचारित करने के लिये किस प्रकार के प्रयास किये गये हैं।
- (3) प्रदेश में रंगमंच व कलाकेन्द्रों की स्थापना पर प्रकाश डालिये ।

### (ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये।

- (1) प्रदेश में विश्वविदयालयों की स्थिति पर प्रकाश डालिये।
- (2) राज्य में भाषा को प्रोत्साहित करने के लिये किस प्रकार के प्रयास किये गये हैं।
- (3) स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात उच्च शिक्षा की संस्थाओं में संख्यात्मक व गुणात्मक परिवर्तन किस प्रकार के आये हैं।

# छात्र टिप्पणी

# छात्र टिप्पणी

